हित कविके धर्मके अनुकूल विषय प्रतिपादन करता है, परन्तु किसीसे यह नहीं कहता कि, तुम्हें हमारा धर्म अंगीकार करना-ही पड़ेगा। महाकवि बाणभट्टने कहा है—

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥

इसमें जिस महाकविके गद्यबन्ध ग्रन्थको काव्योंका राजा बतलाया है, वे भट्टार हरिश्चन्द्र जैन थे। जल्हणकी सूक्तिमुक्तावलीमें महाकवि श्रीधनंजयकी प्रशंसामें कहा है—

द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनं जयः॥

द्विसंधानमहाकाव्यके प्रणेता परम जैन धनंजयका नाम किसने न सुना होगा? ध्वन्यालोकके कर्ता आनन्दवर्धन और हरचरित महाकाव्यके कर्ता रत्नाकरने भी धनंजय की स्तुति की है। इसी प्रकार महाकवि वाग्भट्ट जो जैन थे, उन्होंने कालिदासकी प्रशंसामें कहा है—

नव्यनव्यक्रमासावानुक्षणं यस्य सूक्तयः।
प्रभवन्ति प्रमोदाय कालिदासः स सत्कविः॥

परमभट्टारक श्रीसोमदेवसूरिने यशस्तिलकचम्पूके दूसरे आश्वासमें "सुकविकाव्यकथाविनोददोहनमाघ" पद देके माघ महाकविकी प्रशंसा की है।

इत्यादि और भी अनेक उदाहरणोंसे जाना जाता है कि, प्राचीनकालमें एक दूसरेके ग्रन्थोंके पठनपाठनकी पद्धति बहुलतासे थी। परन्तु अब वह समय बहुत पीछे पड़ गया है,

आजकलका समय उसके ठीक प्रतिकूल है । विद्याकी न्यूनतासे लोगोंमें द्वेषबुद्धि बहुत बढ गई है, इस लिये वे एक दूसरेके ग्रन्थोंका पठन पाठन तो दूर रहे, दूसरेके ग्रन्थोंकी निन्दा करना और उसके प्रचारमें बाधक बनना ही अपना धर्म समझते हैं ।

यदि धर्मकी अपेक्षा यहांके संस्कृतसाहित्यके भेद किये जावें तो मुख्यतासे वैदिक, जैन, और बौद्ध ये तीन हो सकते है । परन्तु भाषा (हिन्दी)साहित्यके वैदिक और जैन केवल दो ही हो सकेंगे । क्योंकि—जिस समय भाषासाहित्यका प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय भारतमें बौद्धधर्मका प्रायः नामशेष हो चुका था, और यदि कहीं थोड़ा बहुत रहा भी हो तो उसकी भाषा हिन्दी नहीं थी । संस्कृतसाहित्यको छोड कर हम यहां भाषासाहित्यके सम्बन्धमें ही कुछ कहेंगे—

काशी, आगरा आदिकी नागरीप्रचारिणीसभायें भाषासाहित्यके ग्रन्थोंका प्रकाशन, आलोचन परिचालनादि करती हैं, और उनका उद्देश भी यही है । इन सभाओंके द्वारा भाषासाहित्यको बहुत कुछ लाभ पहुंचा है, परन्तु खेद है कि, इनसे भी धर्मके पक्षपातका ध्वसन नहीं हो सका है और साहित्यसमाजोंमें जितनी गुरुता और उदारहृदयता होनी चाहिये, इनमें नहीं है । इस बातकी पुष्टिकेलिये इतना ही प्रमाण बहुत है कि, आजतक इन सभाओंसे जितने ग्रन्थोंका प्रकाशन–आलोचन हुआ है, उनमें जैनसाहित्यका एक भी ग्रन्थ नहीं है । जहां तक हमको विदित है, इन सभाओंका कोई ऐसा नियम नहीं है कि, वैदिकसाहित्यके अतिरिक्त अन्यसाहित्यका प्रकाशन आलोचन किया जावेगा, परन्तु वैदिकधर्मके अनुयायी सज्जनोंका समूह उक्त सभाओंमें

अधिक है, इस कारण उनकी मनस्तुष्टिकेलिये ही ऐसा किया जाता है। और इसलिये हम कह सक्ते हैं कि, उक्त सभायें भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये नहीं, किंतु एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये स्थापित हैं। जब तक बाणभट्ट और वाग्भट्ट सरीखे उदार हृदयवाले उक्त सभाओंके सभ्य नहीं होंगे, तब तक साहित्यकी यथार्थ सेवा करनेके उद्देशका पालन कदापि नहीं हो सक्ता।

उक्त सभाओंके अतिरिक्त हिन्दीभाषाके साप्ताहिक मासिक-पत्र भी भाषासाहित्यकी उन्नति करनेवाले गिने जाते हैं। परन्तु उनमें जितने प्रसिद्ध पत्र हे, वे किसी एक धर्मके कट्टर अनुयायी और दूसरोंके विरोधी हैं; अतएव उनके द्वारा भी एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है, सामान्य भाषासाहित्यकी नहीं। यह ठीक है, कि प्रत्येक धर्मके साहित्यकी उन्नति उसी धर्मके अनुयायियोंको करना चाहिये, और वे ही इसके यथार्थ उत्तरदाता हैं। परन्तु जिन पत्रोंकी सृष्टि सर्वसामान्य राष्ट्रकी उन्नतिकेलिये है, और जो निरन्तर सबको एकदृष्टिसे देखनेकी डींग मारा करते हैं, उनके द्वारा किसी एक समूहकी उन्नतिमें सहायता मिलनेके बदले क्षति पहुचना क्या कलङ्ककी बात नहीं हैं? मूर्खताके कारण जैनियोंका एक बड़ा समूह ग्रन्थोंके मुद्रित करानेका विरोधी है, इसलिये जैनग्रन्थ प्रथम तो छपते ही नहीं, और यदि कोई जैनी साहस करके किसी तरह छपाता भी है, तो उसका यथार्थ प्रचार नहीं होता। समाचार पत्रोंकी समालोचना ग्रन्थप्रचारणमें एक विशेष कारण है, परन्तु जैनग्रन्थ समालोचनासे सर्वथा वंचित रहते हैं। क्योंकि जैनियोंके जो एक दो पत्र हैं, उनमें तो विरोधियोंके भयसे मुद्रित

ग्रन्थोंकी बात ही नहीं की जाती, और हिन्दीके सामान्य पत्रोंमें जो समालोचना होती है, वह प्रचार होनेमें बाधा देनेके अभिप्रायसे होती है। "छपाई सफाई उत्तम है, मूल्य इतना है, ग्रन्थ जैनियोंके कामका है।" जैनग्रन्थोंकी समालोचना इतनेमें ही पत्र-सम्पादकगण समाप्त कर देते हैं। और यदि विशेष कृपा की, तो दो चार दोष दिखला दिये! दोष कैसे दिखलाये जाते हैं, उनका नमूना भी लीजिये। एक महानुभाव सम्पादकने दौलतविलासकी आलोचनामें कहा था "बड़ी नीरस कविता है!" परन्तु यथार्थमें देखा जावे तो दौलतविलासकी कविताको नीरस कहना कविताका अनादर करना है। हमारे पड़ोसी एक दूसरे सम्पादकशिरोमणिने स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाके भाषा टीकाकार जयचन्द्रजीके साथ स्वर्गीय, शब्द लगा देखकर एक अपूर्व तर्क की थी, कि "जैनियोंमें स्वर्ग तो मानते ही नहीं हैं, इन्हें स्वर्गीय क्यों लिखा" धन्य! धन्य!! त्रिवार धन्य!!! पाठकगण जान सक्ते हैं, कि सम्पादक महाशय जैनियोंके कैसे शुभेच्छुक हैं. और जैनधर्मसे कितने परिचित हैं। जिस ग्रन्थकी समालोचनामें यह तर्क किया गया है, यदि उसीके दो चार पत्रे उलट करके आलोचक महाशय देखते, तो स्वर्ग है कि नहीं विदित हो जाता। पूर्ण ग्रन्थमें १०० स्थानोंसे भी अधिक इस स्वर्ग शब्दका व्यवहार हुआ होगा। परन्तु देखे कौन? जैनी नास्तिक कैसे बने? लोग उनसे घृणा कैसे करें? सारांश यह है कि, हृदयकी संकीर्णतासे आलोचकगण कैसी ही उत्तम पुस्तक क्यों न हो, उसमें एक दो लांछन लगाके समालोचनाकी इतिश्री कर देते हैं, जिससे पुस्तक-प्रचारमें बड़ा भारी आघात पहुंचता है। और सामान्य भाषासा-

हित्यकी उन्नति न होकर एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है।

भारतवर्षमें वैदिक धर्मानुयायियोंके मिलानमें जैनियोंकी संख्या शतांश भी नहीं है, और जबसे भाषासाहित्यका प्रचार हुआ है, तबसे प्रायः यही दशा रही है। राज्यसत्ता न रहनेसे इन ४००-५०० वर्षोंमें जैनियोंकी किसी विषयमें यथार्थ उन्नति भी नहीं हुई है, परन्तु आश्चर्य है कि, इस दशामें भी जैनियोंका भाषासाहित्य वैदिक भाषासाहित्यसे न्यून नहीं है। समयके फेरसे जैनियोंके संस्कृतसाहित्यके अस्तित्वमें भी लोगोंको शंकायें होने लगी थी, परन्तु जब काव्यमालाने जन्म लिया, डा० भांडारकर और पिटर्सनकी रिपोर्टें जैनियोंके सहस्रावधि ग्रन्थोंके नाम लेकर प्रकाशित हुई बंगाल एशियाटिक सुसाइटीने जैनग्रन्थोंका छापना प्रारंभ किया; और जब विद्वानोंके हाथोंमें यशस्तिलकचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाण, गद्यचिंतामणि, काव्यानुशासन आदि काव्यग्रन्थ, शाकटायन कातंत्रप्रभृतिव्याकरण, सप्तभंगीतरंगिणी, स्याद्वादमंजरी, प्रमेयपरीक्षादि न्यायग्रन्थ मुद्रित होकर सुशोभित हुए; तब धीरे २ उनकी वे शंकाये दूर हो गई। इसी प्रकार वर्तमानमें भाषासाहित्यके ज्ञाता जैनियोंके भाषासाहित्यसे अनभिज्ञ हैं परन्तु उस अनभिज्ञताके दूर होनेका भी अब समय आ रहा है। हमलोग इस विषयमें यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रत्येक भाषाके साहित्यके गद्य और पद्य दो भेद हैं, इनमेंसे वैदिक साहित्यमें जिस प्रकार पद्यग्रन्थोंकी बहुलता है, उसी प्रकार जैनसाहित्यमें गद्यग्रन्थोंकी बहुलता है। भाषासाहित्यके विषयमें कभी २ यह निर्देश किया जाता है कि, भाषाकवियोंमें गद्यलिखने-

की प्रथा नहीं थी। हम समझते हैं, यह दोष जैनसाहित्यपर सर्वथा नहीं लगाया जावेगा, गद्यके सैकडों ग्रन्थ जैनियोंके पुस्तकालयोंमें अब भी प्राप्य हैं। पद्यग्रन्थोंकी भी त्रुटि नहीं है, परन्तु उनमें नायकाओंका आमोद प्रमोद नहीं है। केवल तत्त्वविचार और आध्यात्मिकरस की पूर्णताका उज्ज्वलप्रवाह है। संभव है कि, इस कारण आधुनिक कविगण उन्हें नीरस कहके समालोचना कर डालें परन्तु जानना चाहिये कि, शृङ्गाररस को ही रससंज्ञा नहीं है।

जिस समय भाषाग्रन्थोंकी रचनाका प्रारंभ हुआ है, उस समय जैनियोंके विलासके दिन नहीं थे। वे बडी २ आपदायें झेलकर बड़ी कठिनतासे अपने धर्मको जर्जरित अवस्थामें रक्षित रख सके थे। कहीं हमारे अलौकिक-तत्त्वज्ञानका संसारमें अभाव न हो जावे, यह चिन्ता उन्हें अहोरात्र लगी रहती थी, अतएव उनके विद्वानोंका चित्त विलास-पूर्ण-ग्रन्थोंके रचनेका नहीं हुआ और वे नायकाओंके विभ्रमविलासोंको छोडकर धर्मतत्त्वोंको भाषामें लिखनेकेलिये तत्पर हो गये। धर्मतत्त्वोंको देशभाषामें लिखने की आवश्यकता पडनेका कारण यह है कि, उस समय अविद्याका अंधकार बढ़ रहा था और गीर्वाणवाणी नितान्त सरल न होनेसे लोग उसे भूलने लगे थे, अथवा उसके पढनेका कोई परिश्रम नहीं करता था। ऐसी दशामें यदि धर्मतत्त्वोंका निरूपण देशभाषामें न होता, तो लोग धर्मशून्य हो जाते। एक और भी कारण है वह यह कि, हमारे आचार्योंका निरन्तर यह सिद्धान्त रहा है कि, देश काल भावके अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये, इसलिये देशमें जिस समय जिस भाषाका प्राधान्य तथा प्राबल्य रहा है, उस समय उन्होंने उसी भाषामें ग्रन्थोंकी रचना करके समयसूचकता व्यक्त की है।

प्राकृत, मागधी, शौरसेनी आदि भाषाओंके धर्मग्रन्थ इसके साक्षी हैं। देशभाषाओंमें ग्रन्थरचनेका प्रारंभ हमारे आचार्योंके द्वारा ही हुआ है, यदि ऐसा कहा जावे तो कुछ अत्युक्तिकर न होगा। कर्णाटक भाषाका सबसे प्रथम व्याकरण परमभट्टारक श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने गीर्वाण भाषामें बनाया है, ऐसा पाश्चात्य पण्डितोंका भी मत है। मागधीके अधिकाश व्याकरण जैनियोंके ही हैं। भाषाग्रन्थोंके बनजानेसे लोगोंकी अभिरुचि फिर बढने लगी और उनके स्वाध्यायसे समाजमें पुन ज्ञानकी वृद्धि होने लगी।

अभी तक यह भलीभांति निश्चय नहीं हुआ है कि, भाषाकाव्यका प्रचार कबसे हुआ। ज्यों ज्यों शोध होती जाती है, त्यों त्यों भाषाकी प्राचीनता विदित होती जाती है। कहते हैं कि, सवत् ७७० में अवन्तीपुरीके राजा भोजके पिताने पुष्यकवि बन्दीजनको सस्कृतसाहित्य पढाया और फिर पुष्यकविने सस्कृत अलकारोंकी भाषा दोहोंमें रचना की, तबहीसे भाषाकाव्यकी जड पडी। इसके पश्चात् नवमी, ग्यारहवीं, बारहवीं, और तेरहवीं श

१ चित्तोरगढके महाराज **खुमानसिंह** सीसोदियाने सवत ९००में **खुमानरायसा** नामक ग्रन्थकी नानाछन्दोंमे रचना की।

२ सवत् ११२४ से **चन्दकवीश्वरने** **पृथ्वीराजरायसा** बनाना प्रारंभ किया और ६९ सर्गोंमें एकलक्ष श्लोक प्रमाण ग्रन्थ सवत् ११२० से ११४९ तक पृथ्वीराजका चरित्र वर्णन किया।

३ सवत् १२२० में **कुमारपालचरित्र** नामका एक ग्रन्थ महाराज **कुमारपालके** चरित्रका बनाया गया। कहते हैं कि, इसका बनानेवाला जैन था।

४ सवत् १३५७ मे **शारंगधरकविने** **हमीररायसा** और हमीरकाव्य बनाया।

ताब्दीमें भाषाके चार पांच ग्रन्थ निर्मित हुए, परन्तु भाषाकाव्यकी यथार्थ उन्नति सोलहवीं शताब्दीमें कही जाती है। इस शताब्दीमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी रचना हुई है। अन्वेषण करनेसे जाना जाता है कि, जैनियोंके भाषासाहित्यने भी इसी शताब्दीमें अच्छी उन्नति की है। पंडित रूपचन्दजी, पांडे हेमराजजी, बनारसीदासजी, भैया भगवतीदासजी, भूधरदासजी, द्यानतरायजी आदि श्रेष्ठ कवि भी इसी सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं। इन दो शताब्दियोंके पश्चात् बहुतसे कवि हुए हैं और ग्रन्थोंकी रचना भी बहुत हुई है, परन्तु उक्त कवियोंके तुल्य न तो कोई कवि हुए और न कोई ग्रन्थ निर्मापित हुए। सब पूर्वकवियोंके अनुकरण करनेवाले हुए ऐसा इतिहासकारोंका मत है।

हम इस विषयमें अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं कि, जैनियोंमें भाषासाहित्यकी नीव कबसे पड़ी और सबसे प्रथम कौन कवि हुआ। और न ऐसा कोई साधन ही दिखता है कि, जिससे आगे निश्चयकर सकेंगे। क्योंकि जैनियोंमें तो इस विषयके शोधनेवाले और आवश्यकता समझनेवाले बहुत कम निकलेंगे और अन्यभाषासाहित्यके विद्वान् वैदिकसाहित्येतर साहित्यको साहित्य ही नहीं समझते। परन्तु यह निश्चय है कि, शोध होने पर जैनभाषासाहित्य किसी प्रकार निम्नश्रेणीका और पश्चात्पद न गिना जावेगा।

जैनधर्मके पालनेवाले विशेषकर राजपूताना, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटक प्रान्तमें रहते हैं। हिन्दी, गुजराती, मराठी, और कानडी ये चार भाषायें इन प्रान्तोंकी मुख्य भाषायें हैं। परन्तु इन चार भाषाओंमेंसे प्रायः हिंदी ही एक ऐसी भाषा है; जिसमें जैनधर्मके संस्कृत प्राकृतग्रन्थोंका अर्थ

सरल और बोधप्रद लिखा गया है, अथवा उनके आधारसे नवीन सरल-बोधप्रद ग्रन्थ लिखे गये हैं। कर्णाटकी भाषामें अनेक जैन-ग्रन्थ सुने जाते हैं, परन्तु वे सबको सुलभ नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक प्रान्तके जैनीको अपने धर्मतत्त्वोंको जाननेकेलिये हिन्दीका ही आश्रय लेना पडता है। जैनियोंके आवश्यक षट्कर्मोंमें शास्त्रस्वाध्याय एक मुख्य कर्म है, इसलिये प्रत्येक जैनीको प्रतिदिन थोड़ा बहुत शास्त्रस्वाध्याय करना ही पडता है, जो हिन्दीमें ही होता है। इसप्रकार जैनसाहित्य और जैनियोंके द्वारा हिन्दी भाषाकी एक विलक्षणरीतिसे उन्नति होती है। जो जैनी धर्मतत्त्वोंका थोड़ा भी मर्मज्ञ होगा, चाहे वह किसी भी प्रान्तका हो, हिन्दीका जाननेवाला अवश्य होगा। हिन्दी प्रचारकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि, जैनियोंके एक जैनमित्र नामक हिन्दी मासिकपत्रके एक हजार ग्राहक हैं, जिनमें ५०० उत्तर भारतके और शेष ५०० गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटकके हैं। नागरीप्रचारिणी सभाओं और हिन्दी हितैषियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। जिस जैनसाहित्यसे हिन्दीकी इस प्रकार उन्नति होती है, उसको अप्रकट रखने की चेष्टा करना, और उसके प्रचारमें यथोचित उत्साह और सहायता नहीं देना हिन्दी हितैषियोंको शोभा नहीं देता।

जैन-भाषा-साहित्य-भंडारको अनुपम रत्नोंसे सुसज्जित करनेवाले विद्वान् प्राय आगरा और जयपुर इन दो स्थानोंमें हुए हैं। आगरे की भाषा वृजभाषा कहलाती है, और जयपुर की ढूंढारी। वृजभाषाका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हिन्दीकी पुरानी कविता प्राय इसी भाषामें है, जो सबके पठन पाठनमें आती है। यह बनारसीविलास ग्रन्थ जो पाठकोंके हाथमें उपस्थित है, इसी

भाषामें है । वृजभाषाके पद्यसे लोग जितने परिचित हैं उतने गद्यसे नहीं हैं । वृजभाषाका गद्य जाननेकेलिये इस ग्रन्थकी आध्यात्मवचनिका और उपादाननिमित्तकी चिट्ठी पढनी चाहिये। ढूढारी भाषा जयपुर और उसके आसपास ढूढार देशकी भाषा है । इसमें ओर वृजभाषामें इतना ही अन्तर है कि, ढूढारीमें प्राकृतशब्दोंका जितना बाहुल्य रहता है, उतना वृजभाषामें नहीं रहता । और वृजभाषामें फारसी शब्दोंके अपभ्रंश अधिक व्यवहृत होते हैं । ढूढारी भाषाके गद्य ग्रन्थ बहुत सरल हैं, प्रत्येक प्रान्तका थोडी सी भी हिंदी जाननेवाला उन्हें सहज ही समझ सकता है ।

जैनग्रन्थरत्नाकरमें जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ निकला है, उसकी टीका इसी भाषामें है, पाठकगण उसे मगाके ढूढारी भाषासे परिचित हो सक्ते हैं ।

भाषागद्य लिखनेवाले जैनविद्वानोंमें प० टोडरमलजी, प० जयचन्द्ररायजी, प० हेमराजजी, पाडे रूपचन्द्रजी, प० भागचन्द्रजी ओर पद्यलिखनेवालोंमें प० बनारसीदासजी, प० द्यानतरायजी, प० भूधरदासजी, प० भगवतीदासजी, प० वृन्दावनजी, प० देवीदासजी, प० दौलतरामजी, प० विहारीलालजी ओर सेवारामजी आदि कविवर उत्कृष्ट गिनें जाते हैं । इनके बनाये हुए ग्रन्थोंके पढनेसे इनकी विद्वत्ता अच्छी तरह व्यक्त होती है। आश्चर्य है कि, इनमेंसे किसी भी कविने शृगाररसका ग्रन्थ नहीं बनाया । सभीनें आध्यात्म और तत्त्वोंका निरूपण करके अपना कालक्षेप किया है । प० भूधरदासजीने कहा है,—

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गमाई।
सीखविना सब सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अंध असूझनकी अँखियानमें, मेलत हैं रज राम दुहाई!॥

(भूधरशतक)

सच है! जिन महात्माओंके ऐसे विचार थे, उन्हें आध्यात्मिक रचनाके अतिरिक्त केवल शृंगारकी रचना कुछ विशेष शोभा नहीं देती। परमार्थदृष्टिसे शांतरसकी समता शृंगाररस नहीं कर सक्ता। क्योंकि शांतरसकी ऊर्ध्व गति है, शृंगारकी अधो! परन्तु ऐसा कहनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि, इनकी कविता नव-रस-रहित और काव्यके किसी अंगसे हीन होवेगी, नहीं! एक आध्यात्ममें ही नवरसघटित करके इन्होंने अपने ग्रन्थोंको नवरस-युक्त बनाये हैं। कविवर बनारसीदासजीने अपनी आत्मामें ही नव-रस घटित किये हैं! देखिये—

गुणविचार शृंगार, वीर उद्दिम उदार रुख।
करुणा सम रसरीति, हास हिरदै उछाह सुख॥
अष्टकरम दलमलन, रुद्र वरतै तिहिं थानक।
तन विलेच्छ बीभत्स, द्वन्द्व दुखदशा भयानक॥
अद्भुत अनंतबल चिंतवन, शांत सहज वैराग ध्रुव।
नवरस विलास परकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव॥

परब्रह्म आत्माका यह नवरसयुक्त अपूर्व चिंतवन विद्वानोंको अभूत-पूर्व आनन्दमय कर देता है। पाठकगण इसे एकबार अवश्य ही पाठ करें।

भाषासाहित्यके विषयमें इतना ही कह कर अब यह उत्थानिका पूर्ण की जाती है । आशा है कि, यह जिस इच्छासे लिखी गयी है, पाठकोंके द्वारा वह किसी न किसी रूपमें फलवती होगी । पाठकोंके एक बार ध्यानसे पढलेनेमें ही हम अपनी इच्छाको फलवती समझ सक्ते हैं । इत्यलम् विद्वद्वरेषु—

जीयाज्जैनमिदं मतं शमयितुं क्रूरानपीयं कृपा ।
भारत्या सह शीलयत्वविरतं श्रीः साहचर्यव्रतम् ॥
मात्सर्यं गुणिषु त्यजन्तु पिशुनाः संतोषलीलाजुषः ।
सन्तः सन्तु भवन्तु च श्रमविदः सर्वे कवीनां जनाः॥

चन्दावाडी—बम्बई,
१४—४—१९०५.

विदुषां चरणसरोरुहसेवी—
नाथूरामप्रेमी,
देवरी (सागर) निवासी ।

कविवर वनारसीदासजी।

मातृस्वामिस्वजनजनकभ्रातृभार्याजनाद्या
दातुं शक्तास्तदिह न फलं सज्जना यद्ददन्ते ॥
काचित्तेषां वचनरचना येन सा ध्वस्तदोषा
यां शृण्वन्तः शमितकलुषा निर्वृतिं यान्ति सत्त्वाः॥ ४६५

(सुभाषितरत्नसन्दोहे।)

इस संसारमें सज्जनजन जो फल देते हैं, वह माता, स्वामी, स्वजन, पिता, भ्राता, स्त्रीजनादि कोई भी देनेको समर्थ नहीं है। दोषोंको विध्वंस करनेवाली उनकी वचनरचनाको सुनकर जीवधारी शमित-कलुष (पापरहित) होकर निर्वृत्तिको प्राप्त करते हैं।

पाठकगण! कविवर वनारसीदासजीकी शुभफलको देनेवाली संगति हमलोगोंको प्राप्य नहीं है। क्योंकि वे अब इस लोकमें नहीं हैं। किन्तु हमारे शुभकर्मके उदयसे उनकी निर्मल-वचन-रचना (कविता) अब भी अक्षरवती होकर विद्यमान है, जिससे सम्पूर्ण सांसारिक कलुष (पाप) क्षय हो सके हैं। उन अक्षरोंसे कविवरकी कीर्तिकौमुदी कैसी प्रस्फुटित हो रही है! यह उज्ज्वल चाँदनी आत्माका अनुभवन करनेवाले पुरुषोंके हृदयमें एक अलौकिक शीतलताका प्रवेश करती है, जिससे उन्हें संसारकी मोहज्वाला उत्तापित नहीं करती।

जिस महाभाग्यकी वचनरचना ऐसी निर्मल और सुखकर है, उसकी जीवनकथा जाननेकी किसको इच्छा न होगी? और वह जीवनकथा कितनी सुंदर और रुचिकर न होगी? और उसके ग्रह करनेकी कितनी आवश्यकता नहीं है? ऐसा सोच कर

बनारसीदासजीकी जीवनकथाका शोध करना प्रारंभ किया । जिस समय बनारसीविलासके मुद्रित करानेका विचार हुआ है, उसके बहुत पहिले हम इस विषयके प्रयत्नमें थे । हर्षका विषय है कि हमारा थोडासा परिश्रम एक बडे फलरूपमें फलित हो गया है । अर्थात् स्वयं कविवर बनारसीदासजीके हाथका लिखा हुआ ५५ वर्षका जीवनचरित्र प्राप्त हुआ है । इस जीवनचरित्रका नाम उन्होंने अर्द्धकथानक रक्खा है, और ५५ वर्षके पश्चात् शेषजीवन-कथानक लिखनेकी प्रतिज्ञा की है । परन्तु बहुत शोध करने पर भी उनके शेषजीवनके वृत्तसे हम अनभिज्ञ रहे । अर्द्धकथानक में जो कुछ लिखा है, उसको हम गद्यप्रेमी पाठकोंकी प्रसन्नताकेलिये अपनी आलोचनासहित यहां प्रकाश किये देते हैं । अर्द्धकथानक पद्यबन्ध है । इस चरित्रमें उसके अनेक सुन्दर पद्य भी यथावसर दिये जावेंगे ।

पाश्चात्य पंडितोंका यह एक बडा भारी आक्षेप है कि, भारतके विद्वान् जीवनचरित्र अथवा इतिहास लिखना नहीं जानते थे। परन्तु आजसे ३०० वर्ष पहिले जब पाश्चात्यसभ्यताका नाम निशान नहीं था, भारतका एक शिरोमणि कवि अपने जीवनके ५५ वर्षका वृत्तान्त लिखकरके रखगया है, इतिहासमें यह एक आश्चर्यकारी घटना है । हम निर्भय होकर कह सक्ते हैं कि, कविशिरोमणि बनारसीदासजी एक ही कवि थे, जिन्होंने अपने जीवनकी सच्ची घटनायें लिखकर अच्छे स्पष्ट शब्दोंमें गुणदोषोंकी आलोचना की है । दोषोंकी आलोचना करना साधारण पुरुषोंका कार्य नहीं है ।

भाषासाहित्यमें अनेक संस्कृत तथा भाषा कवियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं, परन्तु उनमें तथ्य बहुत थोडा है । क्योंकि किंवद-

न्तियोंके आधारसे उनमें अनेक असंभव घटनाओंका समावेश किया गया है, जिनपर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सक्ता । ऐसी दशामें चरित्रसे जो लोकोपकार होना चाहिये, वह नहीं होता। क्योंकि चरित्रका अर्थ चारित्र अथवा आचरण है, और आचरणोंमें अन्तर्बाह्य दोनोंका समावेश होना चाहिये । जिनचरित्रोंमें यह बात नहीं है, वे पूर्ण चरित्र नहीं हैं। कविवर बनारसीदासजीके जीवनचरित्रसे भाषासाहित्यकी इस एक बडी भारी त्रुटिकी पूर्ति होगी — क्योंकि अन्तर्बाह्य चरित्रोंका इसमें अच्छा चित्र खींचा गया है।

प्रारंभ।

पानि–जुगलपुट शीस धरि, मान अपनपो दास ।
आनि भगत चित जानि प्रभु, वन्दों पांस सुपास ॥ १ ॥

यह मंगलाचरण अर्धकथानकका है। कविवर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथके विशेष भक्त थे, इसलिये कवितामें यत्र तत्र उक्त जिनेन्द्रद्वय की ही स्तुति की है। आपका जन्मनाम विक्रमाजीत था, परन्तु आपके पिता जब पार्श्वनाथसुपार्श्वनाथकी जन्मभूमि वनारस (काशी) की यात्राको गये थे, तब भक्तिवश बनारसीदास नाम रखदिया था, इसका विशेष विवरण आगे दिया गया है। वनारसीदासजी को भी अपने नामके कारण बनारस और उक्त जिनेन्द्रद्वयके चरणोंसे विशेषानुराग हो गया था। वनारसीनगरी की व्युत्पत्ति देखिये आपने कैसी सुन्दर की है—

---

१ पार्श्व। २ सुपार्श्व।

कवित्त ।

गंगा माहिं आय धँसी, द्वै नदी वरुना असी
बीच वसी बानारसी नगरी बखानी है ।
काशिवारदेश मध्य गांव तातें काशी नांव,
श्रीसुपास–पासकी जनमभूमि मानी है ॥
तहां दोऊ जिन शिवमारग प्रकट कीन्हों,
तबसेती शिवपुरी जगतमें जानी है ।
ऐसीविधि नाम भये नगरी बनारसीके,
और भांति कहैं सो तो मिथ्यामतवानी है ॥१॥

और भी अर्धकथानक की भूमिका बांधते हुए कहा है;–

जिन पहिरी जिन जनमपुरि, नाम मुद्रिकाछाप ।
सो बनारसी निज कथा; कहै आपसों आप ॥ ३ ॥

भगवान् पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथकी स्तुति नाटकसमयसारके प्रारभमें कैसी अच्छी की है—

(सर्व ह्रस्वाक्षर) मनहरण ।

करमभरमजगतिमिरहरनखग,
उरगलखनपग शिवमगदरसि ।
निरखत नयन भविक जल बरखत,
हरखत अमित भविकजन सरसि ।
मदनकदनजित परमधरमहित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसि ।

सजलजलदतन मुकुट सपत फन,
कमठदलनजिन नमत बनरसि ॥ २ ॥

(सर्व ह्रस्वकारान्त) षट्पद।

सकलकरमखलदलन, कमठशठपवनकनकनग[१]।
धवलपरमपदरमन, जगतजनअमलकमलखग ॥
परमतजलधरपवन, सजलघनसमतन समकर।
परअघरजहरजलद, सकलजननत भवभयहर ॥
यमदलन नरकपदछयकरन, अगमअतटभवजलतरन।
वर सबलमदनवनहरदहन, जय जय परमअभयकरन ॥३॥

मनहरण।

जिनके वचन उर धारत जुगलनाग,
भये धरणेंद्र पदमावति पलकमें।
जाकी नाम महिमा सो कुधातु कनक करे,
पारस पाषान नामी भयो है खलकमें ॥
जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम,
आपुनो स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें।
तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब,
दीजे मोहि साता दृगलीलाकी ललकमें ॥

उक्त तीन छन्द विशेष मनोहर और युक्ति पूर्ण हैं, इसलिये हम को हठात् उद्धृत करना पड़े हैं। चारित्रसम्बन्धमें इनसे केवल इतना ही सारांश लेना है कि, कविवर पार्श्वसुपार्श्वनाथको इष्ट मानते थे।

---

१ मूर्ख कमठ रूपी वायुको अचल सुमेरुके समान।

पूर्व वंशधरोंकी कथा ।

मध्यभारतमें **रोहतकपुर** नामक एक नगर है । उसके निकट **विहोली** नामका एक ग्राम है । विहोलीमें राजपूतोंकी बस्ती है । वहां कारणवश एक समय किसी जैनमुनिका शुभागमन हुआ । मुनिराजके विद्वत्तापूर्ण उपदेशों और लोकोत्तर आचरणोंसे मुग्ध होकर ग्रामवासी सम्पूर्ण राजपूत जैनी हो गये, और—

पहिरी माला मंत्रकी, पायो कुल **श्रीमाल** ।
थाप्यो गोत **विहोलिआ**, वीहोली-रखपाल ॥

अर्थात् नवकारमंत्रकी माला पहिनके श्रीमालकुलकी स्थापना की और विहोलिया गोत्र रक्खा । वीहोलिया कुलने खूब वृद्धि पाई और दूर २ तक फैल गया । इस कुलमें परंपरागत बहुतकालके पश्चात् गंगाधर और गोसल नामके दो पुरुष हुए । गंगाधरके वस्तुपाल, वस्तुपालके जेठमल, जेठमलके जिनदास और जिनदासके मूलदास उत्पन्न हुए । मूलदासजी हिन्दी फारसीके ज्ञाता थे । यथा,—

मूलदास जिनदासके, भयो पुत्र परधान ।
पढ्यो हिन्दुगी[1] फारसी, भागवान बलवान ॥

मूलदासजी की वणिक वृत्ति थी । अपनी विद्वत्ता और सचाईके कारण वे मुगलबादशाहके परम कृपापात्र हो गये थे । मालवा के नरवर नामके नगरमें हुमायूं के किसी उमराव[2] को वहां जागीर प्राप्त हुई थी । यथा—

---

१ हिन्दी । २ आफिसर ।

तहां मुगल पाई जागीर।

१ संवत् १६०८ में मालवा हुमायूके मातहत नहीं था। उस समय हुमायू हिन्दुस्तानमे नहीं था, काबुलमें था। संवत् १६०८ में हिजरी सन् ९०८ था, और उस समय मालवेमें शेरशाहका अमल था उसकी तरफसे शुजाखां हाकिम था।

मालवेका यह हाल है कि वहां भी मुहम्मदतुगलकके वक्तसे अलग बादशाही हो गई। आखरी बादशाह महमूदखिलजी था, उससे गुजरातके सुलतान बहादुरने ९ शाबान सन् ९३७ (चैत्र सुदी ११ संवत् १५८७) को मालवा छीन लिया था।

सन् ९४१ (संवत् १५९२) में हुमायूंबादशाहने सुलतानबहादुरको भगाकर मालवा लिया। सन् ९४२ (संवत् १५९३) में जब बादशाह मालवेसे आगरे और आगरेसे बंगालेको शेरखां पठानसे लड़ने गये, तो महमूदखिलजीके गुलाम मल्लूखांने मुगलोंको निकालकर मालवेमें अमल कर लिया और कादरशाह अपना नाम रख लिया।

सन् ९४९ (संवत् १५९९) में शेरखांने कादिरशाहको निकालकर शुजाखांको मालवेमें रक्खा।

सन् ९६२ (संवत् १६१२) में शुजाखां मर गया। उसका बेटा बायजीद मालवेका मालिक होकर बाजबहादुर कहलाने लगा।

संवत् १६१८ में अकबरबादशाहके अमीरोंने बाजबहादुरको निकालकर मालवेको दिल्लीके राज्यमें मिला दिया।

इस व्यवस्थासे मालूम होता है कि, संवत् १६०८ में जो शुजाखां मालवेका मालिक था, वह हुमायूका सरदार नहीं शेरखांका सरदार था और उस समय शेरखांके बेटे सलीमशाहके मातहत था।

जानना चाहिये कि, कालपी और गवालियर बाबरके समयसे हुमायू बादशाहके अधिकारमें थे। कालपीमें बादशाहका चचा यादगार-

शाह हुमायूंको चरंवीर ॥ १५ ॥

मूलदामजी उक्त नरवर नगरमें शाहीमोदी बनकर गये ओर अपना कार्य प्रतिष्ठापूर्वक करने लगे। कुछ दिनके पश्चात् अर्थात् सावन सुदी ५ रविवार सवत् १६०२ को आपको एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। जिसका नाम खरगसेन रक्खा। दो वर्षके पश्चात् घनमल नामके दूसरे पुत्रने अवतार लिया। परन्तु तीन वर्ष जीवित रहके,—

घनमल धनदल उडि गये, कालपवनसंजोग।
मातपितातरुवर तये, लहि आतप सुतसोग ॥ १९ ॥

घनमलके शोक को मूलदासजी झेल नहीं सके और सवत् १६१३ में पुत्रके कुछदिन पीछे पुत्रकी गति को प्राप्त हो गये।

मूलदासकी मृत्युके पश्चात् उनकी स्त्री और वालक दोनों अनाथ हो गये, अनाथिनीको पतिके विना ससार स्मशान सा दिखने लगा परन्तु इतनेसे ही कुशलता न हुई, मुगलसरदार मूलदासका काल सुनकर आया, और उसने इनका घर खालसा करके सब जायदाद

नासिरमिरजा और गवाल्यिरमें **अबुलकासिम** हाकिम था। **नरवर** गवालियरके नीचे था, सो वहां कोई **मुगलहाकिम** रहता होगा, जिसके मोदी **बनारसीदास**जीके दादा **मूलदास** थे। परन्तु सवत् १६०८ में नरवरका हाकिम मुगल नहीं पठान था, सवत् १६१३ में मुगल होगा, क्योंकि सवत् १६१२ से फिर हुमायूका राज्य दिल्लीमें हो-गया था।

१ अद्धकथानककी जो प्रति हमारे पास है, उसमें **चरंवीर** शब्दपर **'उमराव'** ऐसी टिप्पणी है।

२ कदाचित् धनसे कविराजने नमका भाव रक्खा है।

जब्त करली। अनाथिनी और भी अनाथिनी होगई। मुगलसरदार की निर्दयताका कुछ ठिकाना था? "मरेको मारै शाह मदार"।

अनाथविधवा इस घोर विपत्तिको वहां रहकर सहन न कर सकी, और अनाथ बालकको पीठपर बाँधके पूर्वदेशकी ओर चल पडी। और नानाप्रकारके पथसकटोंको झेलती हुई, कुछ दिनोंके पश्चात् जौनपुर शहरमें पहुची। जौनपुरमें *अनाथिनीका पीहर था।* यहा के प्रतिष्ठित रईस चिनालिया गोत्रज मदनसिंहजी जौंहरी की यह भतीजी थी। मदनसिंहजी पुत्रीको पाकर प्रसन्न हुए और उसकी दुर्दशा सुनकर बहुत दुःखी हुए। पीछे दिलासा देके पुत्रीको समझाया कि, एक पुत्रसे सब कुछ हो सक्ता है, सुखदुःख वृक्षकी छायाके समान हैं। पुत्र की रक्षा कर और सुखसे रह। यह घर द्वार सब तेरा है।

जौनपुर गौमती नदीके किनारे बसा हुआ है। पठान वंशोद्भव जोनाशाह सुलताननें इस नगरको बसाया था; इस कारण इसका नाम जौनपुर हुआ। उस समय जौनपुरराज्यका विस्तार पूर्वमें पटना पश्चिममें इटावा दक्षिणमें विंध्याचल और उत्तरमें हिमालय तक था। कविवरने इस नगरका वर्णन स्वतः देखकर बहुत लिखा है। परन्तु विस्तारभयसे हम उसे छोडे देते हैं, और बादशाहों की नामावली जो एक जानने योग्य विषय है, लिखे देते हैं,—

प्रथमशाह **जोनाशाह** जानि।
दुतिय **बबक्कर** शाह बखानि॥ ३२॥
त्रितिय भयो **सुरहरसुलतान**।
चौथो **दोस्तमुहम्मद** जान॥

पंचम भूपति शाह **निजाम** ।
छट्ठमशाह **बिराहिम** नाम ॥ ३३ ॥
सत्तम साहिब शाह **हुसेन** ।
अट्ठम **गाजी** सज्जितसैन ॥
नवमशाह **बख्यासुलतान** ।
बरती जासु अखंडित आन ॥ ३४ ॥

---

१ बनारसीदासजीने जोनपुरके बादशाहोंके ये ९ नाम लिखे हैं—

१ जोनाशाह   २ बबक्कर   ३ सुरहर
४ दोस्तमुहम्मद   ५ शाहनिजाम   ६ शाहबिराहीम (इब्राहीम)
७ शाहहुसेन   ८ गाज़ी   ९ बख्यासुलतान

इन बादशाहोंका पतालगानेकेलिये फारसीतवारीखोंमें जोनपुरका हाल ढूंढकर ऊपरके लेखसे मिलाया तो, कुछ और ही पाया, और नाम भी कुछ और ही पाये। नाम उन तवारीखों के ये हैं—

१ आईनअकबरी २ तारीख निजामी ३ तारीख फरिश्ता ४ तारीख फीरोजशाही ५ सेरुलमुताखरीन ६ जुगराफिये व तारीखजोनपुर वगैर·—

इनमें सबसे पुरानी फीरोजशाही है। इन तवारीखों में जो विवरण जौनपुरकी सल्तनतका लिखा है, उसका सारांश यह है कि—

खिलजियोंका राज्य जानेपर **तुगलक**जातिका दिल्लीमें उदय हुआ। पहिला बादशाह इस घरानेका **गाजी** तुगलक पंजाबका सूबेदार था, जो रि–ता० १ शाबान सन् ७२१ (भादोंसुदी ३ संवत् १३७८) को सब अमीरोंकी सलाहसे दिल्लीके सिंहासनपर बैठा था। और रबीउलअव्वल सन् ७२५ (फाल्गुण सुदी और चैत्रवदी संवत् १३८१) में मरा।

उसका बेटा मलिक **फखरुद्दीनजोना** सुल्तान **नासिर-**

उलदीन **मुहम्मदशाह**के नामसे तख्तपर बैठा। इसीको **मुहम्मद-तुगलक** भी कहते हैं। यह २१ मुहर्रम सन् ७५२ (चैतवदी ८ सवत् १४०७) को सिंधमें मर गया।

मुहम्मदतुगलकके बेटा नहीं था, इसलिये उसके काका सालार रज्जबका बेटा **फीरोजशाहबारबुक** बादशाह हुआ। इसने सन ७७४ (सवत् १४२९) में बंगालेसे लौटते हुए, गोमतीनदीके तीरपर १ अच्छी समचौरस जमीन देखकर वहा शहर बसाया, और उसका नाम अपने चचेरेभाई **मुहम्मदतुगलक**के असली नाम **मलिकजोना**के नामसे **जोनपुर** रक्खा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिकजोनाको यह कहते हुए देखा था कि, इस शहरका नाम मेरे नामपर रखना।

फीरोजशाह १३ रमजान सन् ७९० (भादों सुदी १५ सवत् १४४५) को ९० वर्षका होकर मरा। उसका पोता दूसरा **ग्यासुद्दीन तुगलक** बादशाह हुआ। वह २१ सफर सन् ७९१ (फागुण वदी ८ स० १४४५) को मारा गया। उसका चचेराभाई **अबूबक** उसकी जगह बैठा। वह भी २० जिलहिज्ज सन् ७९१ (पौष वदी ७ सवत् १४१७) को मर गया। तब उसका काका **नासिरउलदीन मुहम्मदशाह** बादशाह हुआ। वह १७ रवीउलअव्वल सन् ७९६ (फागुण वदी ४ सवत् १४५०) को मर गया। उसका बेटा **हुमायूंखां** १९ को तख्त पर बैठा और १॥ महीने पीछे ही मर गया। तब उसके भाई **नासिर-उलदीन महमूदशाह**को ख्वाजाजहां वजीरने उसकी जगह बैठाया। इसने पूर्वके हिन्दुओंका स्वतन्त्र हो जाना सुनकर **ख्वाजाजहां**को उनके ऊपर भेजा। यही पहिला बादशाह **जोनपुर**का हुआ। इसका नाम मलिक **सरवर** था और फीरोजके समयमें ड्योढीका दारोगा था। नासिरउद्दीन-मुहम्मदशाहने इसको वजीर बनाकर ख्वाजाजहाका खिताव दिया था और जब नासिरउद्दीन **महमूदशाह**ने इसे पूर्वको भेजा, तो **सुलतानु-लशर्क**का खिताव भी उसको दे दिया था, जिसका अर्थ होता है पूर्वका बादशाह।

जोनपुरके शाह ।

१ सुलतानउलशर्क **ख्वाजाजहांने** हिन्दुओंपर जीत पाकर **जोनपुर**में अपनी राजधानी स्थापित की। उसका राज्य परगने **कोल** से **तिरहुत** तक था। वह सन् ८०२ (संवत् १४५६।५७) में मरा। उसके संतान नहीं थी, करनफल नाम १ लडकेको बेटा बनाया था। वही उसके पीछे जोनपुरका बादशाह हुआ और **मुबारिकशाह** नाम रक्खा।

२ **मुबारिकशाह**—तुगलकोंकी बादशाही दिन २ गिरती देखकर पूरा स्वतंत्र होगया। २ वर्ष पीछे सन् ८०४ (संवत् १४५८।५९) में मरा। संतान इसके भी नहीं थी, भाई तख्तपर बैठा।

३ **इब्राहीमशाह** (मुबारिकशाहका भाई)—इसके समयमें दिल्ली तुगलकोंसे **सैयदोंने** ले ली। पहिले सैयद **खिजरखां** और फिर सैयद **मुहम्मदशाह** वहांका बादशाह हुआ। **इब्राहीम** दोनोंसे ही लडता लडता सन् ८४४ (संवत् १४९६ म) मर गया।

४ **महमूदशाह** (सुलतान **इब्राहीम**का बेटा)—इसके समयमें दिल्लीका बादशाह **मुहम्मदशाह** मर गया और **अलाउद्दीन**शाह बैठा। अमीरोंने उससे नाराज होकर **महमूदशाह** को बुलाया, तब **अलाउद्दीन** पंजाबके हाकिम **बहलोललोदी**को दिल्ली सौंपकर **बदाऊं** चला गया। बहलोलसे और महमूदसे लडाई होती रही, निदान महमूद सन् ८६२ (संवत् १५१४।१५ में) मर गया। बेटा न था, भाई तख्त पर बैठा।

५ **मुहम्मदशाह** (महमूदका भाई)–इसने **बहलोल**से सुलह कर ली, परन्तु फिर लडाई होने लगी और मुहम्मदशाह अपने भाइयों के झगडेमें मारा गया। ५ महीने राज्य किया। उसका भाई **हुसेनशाह** बादशाह हुआ।

६ **हुसेनशाह**—इससे और **बहलोल**से भी बडे २ युद्ध हुए, निदान बहलोलने जोनपुर लेकर अपने बडे बेटे **बारबुक**को दे दिया। हुसेनशाह बिहारमें चलागया।

७ **बारबुकशाह** लोदी–सन् ८९४ (संवत् १५४५।४६) में बहलोल

मरा और छोटा बेटा **निजामखां** दिल्लीमें बादशाह हुआ और सुलतान **सिकंदर** कहलाया। बारबक उससे लड़ने गया और हारा। सिकंदरने जोनपुर तो उसे फेर दिया, परन्तु मुल्कमें अपने हाकिम बैठा दिये, जिन के जुल्मोंसे जोनपुर राज्यके आश्रित राजोंने तंग होकर सुलतान **हुसेन**-को बुलाया। वह सन् ८९५ (संवत् १५४६।४७) में आकर **सिकंदर**से लड़ा, परन्तु हारकर बंगालेमें चला गया। सिकंदर अपने बेटे **जलाल-खां**को जोनपुरमें बैठाकर चला गया।

८ **जलालशाह** लोदी—७ जीकाद सन् ९२३ (मंगसर सुदी ८ संवत् १५७३) को सिकंदर मरा और जलालशाहका भाई **इब्राहीम**शाह दिल्लीके तख्तपर बैठा, उसने जलालशाहको निकालकर जोनपुर **दरियाखां** लोहानीको दे दिया।

९ **दरियाखां**लोहानीके समयमें **बाबर** बादशाहने सुलतान **इब्राहीम**को मारकर दिल्ली लेली। उसी समय दरियाखां भी मर गया।

१० **बहादुरशाह** (दरियाखांका बेटा)–बापके पीछे बादशाह हो गया। क्योंकि पठानोंकी बादशाही दिल्लीसे जाती रही थी। बाबर बादशाहने शाहजादे **हुमायूं**को भेजा, उसने बहादुरशाहको निकालकर **हिंदूबेग**को जोनपुरमें रख दिया। उसके पीछे **बाबाबेग** उसका बेटा जोनपुरमें हाकिम हुआ।

११ बाबाबेगको, **शेरखांसूर**ने, हुमायूं बादशाहसे बादशाही लेनेके पीछे जोनपुरसे निकाल दिया और अपने बेटे **आदिलखां**को जोनपुरका हाकिम बनाया।

१२ **आदिलखांसूर**–१२ रबीउल अव्वल सन् ९५२ (जेठ सुदी १४ संवत् १६०२) को शेरशाहके मरनेपर **सलीमशाह** तख्तपर बैठा, उसने आदिलखांको बुलाकर बयानेका किला दे दिया और जोनपुर खालसे कर लिया। फिर जोनपुर स्वतन्त्र राज्य नहीं हुआ, पठानोंके पीछे मुगलोंके राज्यमें भी वहां हाकिम रहते रहे।

यह जोनपुरका संक्षिप्त इतिहास है। जिन्होंने इतिहास नहीं देखा है,

वे यही जानते हैं कि, जोनपुर **जोनाशाह** (मुहम्मद तुगलक) ने बसाया था, और यही सुनसुनाकर **बनारसीदास**जीने भी पहिलाबादशाह **जोनाशाह** लिखा है। यह बात कविवरके ३०० वर्ष पहिले की थी, और सो भी किसी इतिहासके आधारसे नही लिखी थी, पुराने लोगोंसे पूछ पाछके लिखी थी, उसमें इतनी भूल होना सभव है। उन्होंने इस विषयमें स्वतः सशकित चित्त होकर लिखा है।

"हुते पूर्व पुरुषा परधान। तिनके वचन सुनें हम कान।
वरनी कथा यथाश्रुत जेम। **मृषादोष** नहिं लागे एम" ३७८॥
(अर्धकथानक)

इस प्रकार **प्रथम** बादशाह जौनाशाह नहीं, किन्तु फीरोजशाहको समझना चाहिये। **दूसरा** जो बबक्करशाह लिखा है, वह फीरोजशाह **बारबुक** है। बारबुकका अपभ्रश बबक्करशाह हो सक्ता है।

तीसरा—जो **सुरहर** सुलतान लिखा है, वह **ख्वाजाजहां** है, जिस का नाम मलिक **सरवर** था, सरवर ही गलतीसे सुरहर लिखा गया है।

चौथा—जिसको **दोस्तमोहम्मद** लिखा है, वह मुबारिकशाह है, जिसका नाम **करनफल** था। शायद जोनपुरवाले उसे **दोस्तमुहम्मद** कहते थे।

पांचवां—जिसको शाहनिजाम लिखा है, उसका पता मुबारिकशाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता।

छट्टा—जो शाहब्राहीम लिखा है, वह **इब्राहीम**शाह ही है।

सातवां—जिसे **शाहहुसेन** लिखा है, वह इबराहीमशाहके बेटे महमूद और पोते मुहम्मदशाहके पीछे हुआ था। बीचके इन दो बादशाहोंको **बनारसीदास**जीने नहीं लिखा है।

आठवां—जो गाजी लिखा है, वह सैय्यद **बहलोललोदी** है। **शाहहुसेन**के पीछे वही जोनपुरका मालिक हुआ था।

नवमाँ जो बख्यासुलतान लिखा है, वह बहलोलका बेटा बारबुकशाह हो सक्ता है। जिसे बापने जोनपुरका तख्त दिया था।

बालक खरगसेन अपने नानाके घर सुखसे रहने लगा। आठ वर्षकी उमर होने पर उसने पढना प्रारंभ किया और थोड़े ही दिनोंमें हिसाब किताब चिट्ठीपत्रीकेकार्यमें व्युत्पन्न हो गया। योग्य वय होनेपर नानाके साथ सोना चांदी और जैवाहिरातका व्यापार सीखने लगा और व्यापार कुशल होनेपर ग्रामान्तरोंमें भी आने जाने लगा। एक दिन खरगसेनने अपनी मातासे मंत्र लेकर नानाकी सम्मतिके बिना ही एक घोडेपर सवार होकर बंगालकी ओर कूच कर दिया, और वह कई मंजिलें तय करके इच्छित स्थानपर जा पहुंचा। उस समय

इस तरह बनारसीदासजीके लेखकी विधि मिल सकती है।

१ जोनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो भी सही है क्योंकि जोनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बडा भारी शहर था, और जब वहां बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली ही बना हुआ था, ४ कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जोनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमें जोनपुरके १९ मुहाल लिखे हैं, परन्तु अब अगरेजी अमलदारीमें जोनपुर ५ ही तहसीलोंका जिला रह गया है।

जोनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी, इसका पता जुगराफिये (भूगोल) जोनपुरसे मिलता है। उसमें लिखा है कि, अकबर बादशाहने गरीबोंकी आंखोंका इलाज करनेकेलिये एक हकीमको भेजा था, वह गरीबोंका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोंको मोल लेकर दवा देता था। तौ भी हजार पंद्रहसौ रुपये रोजकी उसको आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोंने जब उससे कहा कि, आजतो ५००, का ही सुरमा बिका है, तब उसने एक बडी आह भरी और कहा हाय! जोनपुर वीरान (ऊजड़) हो गया। फिर वह उसी दिन आगरेको चला गया।

बगालमें **सुलेमान** सुरुतान राज्य करता था। सुलेमान अपने साले लोदीखानपर बहुत प्यार करता था, और उसे अपने पुत्रके स्थानापन्न मानता था। सुलेमानके कोई पुत्र नहीं था। उक्त लोदीखानके दीवानका नाम धन्नाराय श्रीमाल था। दीवान बड़ा उदारशील और कृपालु था। उसका आश्रयपाकर ५०० श्रीमाल वहां निवास करते थे। खरगसेनजी इन्हींकी सेवामें जाकर उपस्थित हुए। खरगसेनकी आयु अब भी छोटी थी। परन्तु वाक्पटुता और विचारशीलता देखके थोडे दिन अपने आश्रित रखके दीवान साहिबने इन्हें चार परगनोंका पोतदार बना दिया। खरगसेन परगनोंमें जाके अमलदारी करने लगे। छह सात महीनेके पीछे दीवान साहिबने शिखरजीकी यात्राका सघ चलाया, और कुछ दिनोंमें वे यात्रासे लौटके घर आ गये। उस दिन सामायिक करते २ उदरशूल उत्पन्न हुआ, और तत्काल ही उनका प्राण पखेरू उड़ गया। कविवर कहते हैं—

पुण्यसंजोग जुरे रथपायक, माते मतंग तुरंग तवेले।
मानि विभौ अगयो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह लेले॥
वंध चढाय करी थिति पूरन, अन्त चले उठि आप अकेले।
हारि हमालकी पोटसी डारिकै, और दिवालकी ओट व्है सेले

---

१ **सुलेमान** किरानी जातिका पठान था। वह हिजरीसन् ९५६(सवत् १६०६ से सन् ९८१ (सवत् १६३०) तक वगालका स्वतंत्र हाकिम रहा था। उसकी राजधानी **गोड़में** थी, जो वगालका एक पुराना शहर था और जिसपरसे बगालको अब तक **गोडबंगाल** कहते हैं, और पहिले गौडदेश भी कहते थे। कविवरने सवत् १६२५ में बगालका राजा शाहसुलेमानको लिखा है, सो बहुत ठीक है। पीछे सन् ९८३ (सवत् १६३२) में अकवरकी फौजने सुलेमानके बेटे **दाऊदखांसे बंगाला** और **उड़ीसा** छीन लिया।

खरगसेन अपनी मातासे नरवरकी विपत्तिका हाल सुन चुके थे, रायसाहबके शरीरपात होनेपर उन्हें वही बात स्मरण हो आई, इसलिये जो कुछ जमा पूंजी साथमें थी; उसे लेकर एक दुःखी दरिद्रीका वेष बनाकर वहांसे निकल पड़े। कई दिनमें मार्ग चलके जौनपुरमें आये। माताके चरणोंकी पूजा की। जो कुछ द्रव्य था, उन्हें सोंप दिया और विपत्तिका कारण बतलाया। इस समय खरगसेनकी वय केवल १४ वर्षकी थी, माताने आंसू भरके रो दिया।

चार वर्ष जौनपुरमें रहके संवत् १६२६ में खरगसेन आगरेमें व्यापार निमित्त आये। सुन्दरदास पीतिया नामक किसी व्यापारीके सांझेमें व्यापार किया। उक्त सांझीदारसे ऐसी मित्रता हुई कि, दोनोंकी प्रीति देखकर लोग दोनोंको पिता पुत्र समझते थे। चार वर्षके सांझेमें बहुतसा द्रव्य एकत्र किया, और पांचवें वर्ष माता और गुरुजनोंके प्रयत्नसे मेरठनगरके सूरदासजी श्रीमालकी कन्याके साथ खरगसेनका विवाह हो गया। विवाह होनेके पश्चात् फिर अर्गलपुर (आगरा) आकर व्यापार में दत्तचित्त हो गये।

इसी समय अर्थात् संवत् १६३१ में मित्रवर्य सुन्दरदासजी अपनी भार्याके सहित परलोकयात्रा कर गये, और अपने पीछे मात्र एक पुत्री छोड गये। खरगसेनजी उदारचरित्र पुरुष थे, उन्होंने अपनी ओरसे बड़े साजबाजसे मित्रकी पुत्रीका विवाह कर दिया, और पंचोंके सम्मुख सुन्दरदासजीकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुत्रीको सोंप दी।

संवत् १६३३ में खरगसेनने आगरा छोड़ दिया और वे विपुल सम्पत्तिके अधिकारी होकरजौनपुरमें रहने लगे। पीछे जौनपुरके प्रसिद्ध

धनिक लाला रामदासजी अग्रवालके साथ सांझेमें जवाहिरात का घंदा करने लगे ।

संवत् १६३५ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु आठ दश दिन जीवित रहके अपनी बाट लग गया । पुत्रके मरनेका खरगसेनको बहुत शोक हुआ । थोड़े दिनके पीछे पुत्रलाभकी इच्छासे वे रोहतकपुरकी सती की यात्रा करनेको सकुटुम्ब गये । परन्तु भाग्यके फेरसे मार्गमें चोरोंने सर्वस्व लूट लिया, एक फूटी कौडी भी पास में नहीं रही । दम्पती बड़ी कठिनतासे अपने शरीरको लेकर घर लौटके आये । कविवर कहते हैं—

गये हुते मांगनको पूत । यह फल दीनों सती अऊत ।
प्रगट रूप देखें सब लोग । तऊ न समुझें मूरखलोग ॥

खरगसेनके नाना मदनसिंघजी बहुत वृद्ध हो गये थे, इसलिये उन्होंने सब कार्य खरगसेनको सौंप दिया था, और आप शान्तिभावसे कालयापन करते थे । संवत् १६४१ में शान्तिभावके साथ उनका शरीर छूट गया । नानाकी मृत्युके दो वर्षके पश्चात् अर्थात् सवत् १६४३ में खरगसेनजी पुत्रलाभकी इच्छासे फिर सतीकी यात्राको गये । अबकी वार कुशल हुई कि, आनन्दसे लौट आये । और थोड़े दिनके पीछे उनकी मनःकामना भी पूर्ण हो गई । आठ वर्षके पश्चात् पुत्रका मुंह देखा, इस लिये सविशेष आनन्द मनाया गया । दम्पति सुखसमुद्रमें गोते लगाने लगे । पुत्रका जन्मकाल और नाम नीचेके पद्यसे प्रगट होगा,—

संवत् सोलह सौ तेताल । माघमास सितपक्ष रसाल ।
एकादशी वार रविनन्द । नखत रोहिणी वृषको चन्द ॥

रोहिनि त्रितिय चरनअनुसार। खरगसेन घर सुत अवतार।
दीनों नाम विक्रमाजीत। गावहिं कामिनि मंगलगीत॥

पुत्र जब छह सात महीनेका हुआ, तब खरगसेन सकुटुम्ब पार्श्वनाथकी यात्राको काशी गये। भगवत्की भावपूर्वक पूजन करके उनके चरणोंके समीप पुत्रको डाल दिया और प्रार्थना की,–

चिरंजीवि कीजे यह बाल। तुम शरणागतके रखपाल।
इस बालकपर कीजे दया। अब यह दास तुम्हारा भया ८८

प्रार्थना करते समय मन्दिरका पुजारी वहां खड़ा था। उसने थोड़ी देर कपटरूप पवनसाधने और मौनधारण करनेके पश्चात् कहा कि, पार्श्वनाथ भगवानका यक्ष मेरे ध्यानमें प्रत्यक्ष हुआ है, उसने मुझसे कहा है कि, इस बालककी ओरसे कोई चिन्ता न करनी चाहिये। परन्तु एक कठिनता है, सो उसके लिये कहा है कि,—

जो प्रभु पार्श्वजन्मको गांव। सो दीजे बालकको नांव॥९१॥
तो बालक चिरजीवी होय। यह कहि लोप भयो सुर सोय॥

खरगसेनने पुजारीके इस मायाजालको सत्य समझ लिया और प्रसन्न होकर पुत्रका नाम बनारसीदास रख दिया। यही बनारसीदास हमारे इस चरित्रके नायक हैं।

बाल्यकाल।

हरषित कहै कुटुम्ब सब, स्वामी पास सुपास।
दुहुंको जनम बनारसी, यह बनारसीदास॥९३॥

बालक बड़े लाड़ चावके साथ बढने लगा। मातापिताका पुत्र पर निःसीम प्रेम था। एक पुत्रपर किस मातापिताका प्रेम नहीं होता?

सवत् १६४८ में पुन सग्रहणीरोगसे ग्रसित हुआ। मातापिताके शोकका ठिकाना न रहा । ज्यों त्यों मत्र यन्त्र तन्त्रोंके प्रयोगोंसे सग्रहणी उपशान्ति हुई कि, शीतलाने आ घेरा । इस प्रकार १ वर्षके लगभग बालक अतीव कष्टमें रहा । शीतला शान्त होनेपर उक्त बालककी पीठपर एक बालिकाका जन्म हुआ ।

सवत् १६५० में बालकने चटशालामें जाकर पाडे रूपचन्द जीके पास विद्या पढना प्रारभ किया । पाडे रूपचन्दजी अध्यात्मके विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे । उनका बनाया हुआ पचमगलपाठ एक हृदयग्राही श्रेष्ठ काव्य है । सारे जैनसमाजमें इसका प्रचार है । जैनी मानको यह कठस्थ रहता है । बालककी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी, वह दो तीन वर्षमें ही अच्छा व्युत्पन्न हो गया ।

जिस समयका यह इतिहास है, उस समय मुसलमानोंका प्रताप सूर्य मध्याह्नमें था, उनके अत्याचारोंके भयसे देशमें बालविवाहका प्रचार विशेषतासे हो रहा था । अतएव ९ वर्षकी वयमें अर्थात् सवत् १६५२ में खैराबादके शेठ कल्यानमलजीकी कन्याके साथ बालककी सगाई कर दी गई । सवत् १६५३ में एक बडा भारी दुष्काल पडा, लोग अन्नकेलिये बेहाल फिरते दिखाई दिये । अत इस वर्ष विवाह नहीं हुआ । जब दुष्काल क्रम २ से शात हो गया, तब सवत् १६५४ में माघ सुदी १२ को बनारसीदास की बरात खैराबादको गई । विवाह शुभमुहूर्तमें आनन्दके साथ हो गया । बरात लौटके घर आ गई । जिस दिन बरात घर आई उसदिन खरगसेनजीके एक पुत्रीका और भी जन्म हुआ, और उसी दिन वृद्धा नानीने कूच कर दिया। कवि कहते हैं,—

नानीमरन सुताजनम, पुत्रवधू आगौन ।
तीनों कारज एक दिन, भये एक ही भौन ॥ १०७॥

यह संसारविडम्बना, देख प्रगट दुख खेद ।
चतुरचित्त त्यागी भये, मूढ़ न जानहिं भेद ॥ १०८ ॥

उस समय विवाह होनेपर बरातके साथ ही दुलहिन श्वसुरालयमें आती थी, उसी प्रथाके अनुसार दो महीने वधू जौनपूरमें रही, पश्चात् अपने काकाके साथ बिदाई हुई, पित्रालयको चली गई।

एक बड़ी भारी विपत्ति आई । जौनपुरके हाकिम कुलीचने

---

१ कुलीच तुर्की भाषाका शब्द है, इसका अर्थ मालूम नहीं है । जिस नवाब कुलीचका जुल्म जौहरियोंपर बनारसीदासजीने लिखा है, उस कुलीचखांका अकबरनामे और जहांगीरनामेके सैकड़ों पन्ने उलट पुलट करनेसे इतना पता लगा है कि, कुलीचखां इंदूजानका* रहनेवाला जानीकुरबानी जातिका एक तुर्क था। इंदूजान तूरान देशका एक शहर है । जो अब शायद रूस या अमीरकाबुलके कवजेमें है ।

कुलीचखांके बाप दादा मुगल बादशाहोंके नोकर थे। कुलीचखांको अकबरबादशाहने सन् १७ जलूसी (संवत् १६२९) में सूरतकी किलेदारी, और सन् २३ (संवत् १६३५) में गुजरातकी सूबेदारी दी थी। सन् २५ (संवत् १६३७) में उसे वजीर बनाया। सन् २८ (संवत् १६४०) में फिर गुजरातको भेजा और सन् ९९७ (संवत् १६४६) में राजा तोडरमलके मरनेपर वह दीवान बनाया गया, सो सन् १००२ (संवत् १६५०) तक रहा। इसी बीचमें सन् १००० (संवत् १६४८) में जोनपुर भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। सन् १००५ (संवत् १६५३) में बादशाहने शाहजादे दानियालको इलाहाबासके सूबेमें भेजा, तो कुलीचखांको उसका अतालीक (शिक्षक) करके साथ किया । उसकी बेटी शाहजादेको ब्याही थी ।

फिर सन् ४४ (१६५६) में आगरेकी, और सन् ४६ (१६५८) में लाहोर तथा काबुलकी सूबेदारी उसको दी गई ।

सम्पूर्ण जौहरियोंको पकड़वाके बुलवाया, और एक बड़ा भारी नग मांगा, परन्तु उस समय जौहरियोंके पास उतना बड़ा जितना हाकिम चाहता था, कोई नग नहीं था। इसलिये वेचारे नहीं दे सके। इसपर हाकिमका क्रोध और भी उबल उठा। उसने सबको एक कोठरीमें कैद कर दिये। और जब कुछ फल नहीं हुआ तब सबेरे सबको कोड़ोंसे (दुर्रोंसे) पीट २ के छोड़ दिया। इस अत्याचारसे अतिशय व्यथित होकर सम्पूर्ण जौहरियोंने सम्मतिपूर्वक नगर छोड़ दिया और सब यत्र तत्र चले गये। खरगसेनजीने भी अपने परिवारसहित पश्चिमकी ओर गमन किया। हाय! उस राज्यमें कैसा अन्याय था!।

गंगापार कड़ामाणिकपुरके निकट शाहजादपुर नगर है। वहां तक आते २ मूसलाधार पानी वरसने लगा, घोर अंधकार छा गया। मार्ग कीचड़से पूर्ण हो गये, एक पैंड़ चलना भी कठिन हो गया। लाचार शाहजादपुरकी सरायमें डेरा डालना पड़ा। उस

सन् १०१४ (संवत् १६६२)मे **जहांगीर** बादशाहने उसको गुजरातमें बदल दिया, और सन् १०१६ (सवत् १६६२) में वह फिर लाहोर भेजा गया।

सन् ६ जहांगीरी (संवत् १६६९) में काबुल और अफगानिस्थानके बंदोबस्तपर मुकर्रर होकर गया, जहां सन् १०२३ (संवत् १६७१) में मर गया।

बनारसीदासजीने जो संवत् १६५५ में कुलीचखांका जोनपुरमें होना लिखा है, सो सही है। क्योंकि प्रथम तो **जोनपुर कुलीचखांकी** जागीरमें ही था। दूसरे संवत् १६५३ में उसकी तईनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी, जिसके नीचे जोनपूर भी था।

समयके कष्टसे कातर होकर खरगसेन दीन अनाथोंकी नाईं रोदन करने लगे। उन्हें स्त्री पुत्र कन्या और विपुलसम्पत्तिकी रक्षा असंभव प्रतीति होने लगी। परन्तु उदय अच्छा था। उस नगरमें करमचन्द नामक माहुरवणिक था। वह एक परमसज्जन पुरुष था, और खरगसेनकी पहिचानका था। वह इनकी विपत्तिकी टोह पाकर दौडा हुआ आया, और प्रार्थना करके खरगसेनको सपरिवार अपने गृह ले गया। करमचन्दने बड़े आग्रहसे अपना धनधान्यपूर्णगृह खरगसेनको सौंप दिया और आप दूसरे गृहमें रहने लगा। खरगसेनने गृहकी धान्यादि प्रचुरसामग्री न लेनेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सच्चे मित्रके प्रेमके आगे उनके आग्रहका कुछ फल नहीं हुआ। कविवर कहते हैं—

घन वरसै पावस समै, जिन दीनों निजभौन।
ताकी महिमाकी कथा, मुखसों वरनै कौन? ॥१२८॥

शाहजादपुरमें खरगसेन सपरिवार सुखसे रहने लगे, और मित्रके अगाध प्रेमका उपभोग करने लगे। पूर्व की विपत्ति सर्वथा भूल गये। इस भूलनेपर अध्यात्मके रसिया कविवरने कहा है,—

वह दुख दियो नवाब कुलीच।
यह सुख शाहजादपुर बीच॥
एकदृष्टि बहु अन्तर होय।
एकदृष्टि सुख दुख सम दोय॥
जो दुख देखे सो सुख लहै।
सुख भुंजे सोई दुख लहै॥
सुखमें मानै मैं सुखी, दुखमें दुखमय होय।
मूढपुरुषकी दृष्टिमें, दीसैं सुख दुख दोय॥

ज्ञानी संपति विपतिमें, रहै एकसी भांति ।
ज्यों रवि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति॥१३०॥

खरगसेनजी शाहजादपुरमें १० महीने रहकर प्रयागको जिसे उस समय इलाहाबास[1] भी कहते थे और जो त्रिवेणीके तटपर बसा है, व्यापारके लिये गये । परन्तु कुटुम्बको शाहजादपुरमें ही छोड गये । उस समय अकबरका शाहजादा (जहांगीर) प्रयागमें ही रहता था ।

पिताके चले जानेपर इधर बनारसीदासने कौंडिया बट्टे से खरीदकर वेचनेका व्यापार सीखना प्रारंभ किया । प्रतिदिन टके दो टके कमाना और चार छह दिन पीछे अपनी दादीके सम्मुख लाकर रखना, ऐसा नियम किया । कौंडियोंकी कमाईको भोली दादी अपने पौत्रकी प्रथम कमाई समझकर उसकी शीरानी और निकृती लाकर सतीके नामसे बाँट देती थी । दादीके भोलेपनके विषयमें कविवरने बहुत कुछ लिखा है । उसका साराश यह है कि "हमारी दादीके मोह और मिथ्यात्वका ठिकाना नहीं था, वे समझती थीं, कि यह बालक (बनारसी) सती जी की कृपासे ही हुआ है । और इसी विचारमें रात्रि दिवस मग्न रहती थीं । रात्रिको नित्य नये २ स्वप्न देखती थीं, और उन्हें यथार्थ समझके तदनुसार आचरण भी करती थीं ।"

तीन महीनेके पीछे खरगसेनजीका पत्र आया कि, सबको लेकर फतहपुर चले आओ । ऐसा ही हुआ, दो डोली किरायेसे करके और सब सामान लेके बनारसी पिताकी आज्ञानुसार फतहपुर आ गये । फतहपुरमें दिगम्बरी ओसवाल जैनि

---

1 इलाहाबाद ।

योंका बडा समूह था, उनमें वासूसाहजी मुख्य थे। वासूसाह अध्यात्मके अच्छे विद्वान् थे। इनके पुत्र भगवतीदासजीने बनारसीदासजीका सत्कार किया, और एक उत्तम स्थान रहनेको दिया। खरगसेनजीका कुटुम्ब फतहपुरमें आनन्दसे रहने लगा परन्तु कुछ दिन पीछे ही उन्होंने पत्र लिखके बनारसीदाससहित इलाहाबाद बुला लिया। इलाहाबादमें उस समय जवाहिरातका व्यापार अच्छा चटका था। दानाशाह सरकारकी जवाहिराती फरमायशको खरगसेन ही पूरी करते थे। पितापुत्र चार महीने इलाहाबाद रहे, पश्चात् फतहपुर आके कुटुम्बसे मिले। इसी समय खबर लगी कि, नवाबकुलीच आगरेको चला गया है, जौनपुरमें सब

१ ये भगवतीदासजी कविता भी करते थे, परन्तु **ब्रह्मविलास** के निर्माता ये नहीं हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासके कर्ताके पिताका नाम **लालजी** था, और इनके पिताका नाम **वासूसाह** था। ब्रह्मविलासके कर्त्ता **आगरा**के रहनेवाले थे, और ये जौनपुरके थे। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविलासग्रन्थकी रचना संवत् १७५० में हुई है और यह समय १६५० का है। पुरुषका इतना बडा जीवन होना असम्भव है। नाटक समयसारके अन्तमें भी एक **भगवतीदास**का नाम आया है, जो आगरेमें रहते थे, और उक्त कविवरके पांच मित्रोंमें अन्यतम थे।

> रूपचन्द पंडित प्रथम, दुतिय **चतुर्भुज**नाम।
> तृतिय **भगवतीदास** नर, कँवरपाल गुणधाम॥ ११॥
> **धर्मदास** ये पांचजन, × × × × ×

अथवा जौनपुरके भगवतीदासजी ही कदाचित् ये हों, और आगरेमें आ रहे हों।

२ दानाशाह कौन? कहीं **शाहदानियाल** तो नहीं जो अकबर बादशाहका छोटा शाहजादा था और इलाहाबासमें कुछ दिनों तक रहा था। कलीचखाँ उसका अतालीक (गार्डियन) था।

प्रकार शांति है। खरगसेनजी सकुटुम्ब जौनपुर चले आये। अन्य जौहरी आदि जो भाग गये थे, वे भी सब आ गये थे, और जौनपुर फिर ज्यों का त्यों आबाद हो गया था। सब लोग अपने २ कृत्यमें लग गये, और प्रायः एक वर्षतक जौनपुरमें शान्ति रही। यह समय संवत् १६५६ का था। इसके थोडे दिन पीछे ही एक नवीन विपति आई!

अकबरका शाहजादा **सलीमशाह** जो पीछे जहांगीरके नामसे विख्यात हुआ, कोल्हूवनकी आखेटको निकला था। कोल्हूवन जौनपुरके पास है। जौनपुरके **नूरमसुलतान**के पास इसी समय शाहीफरमान आया कि, शाहजादा तुम्हारे तरफ आ रहा है, कोई ऐसा उपाय करो, जिसमें उसका कोल्हूवनका जाना बन्द हो जावे। नूरमसुलतानने शाहीफरमान सिरपर चढ़ाया, और एक विचित्र उपाय बनाया। जहां तहांके सब मार्ग रोक दिये। शहरके आवागमनके दरवाजे बन्द करा दिये। गौमतीमें नौकायें चलाना बन्द करा दी, और आप गढ़में जाके बैठ गया। बुर्जोंपर तोपें चढवा दीं। बन्दूक गोलीबारूदोंका भंडार खोल दिया। इस प्रकार विग्रहका ठाठ देखके प्रजाने भागना प्रारंभ किया। कुछ समझदार धनाढ्य लोगोंने मिलकर सुलतानसे प्रार्थना की, परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ, इसलिये वे लोग भी भागे। और थोडे ही समयमें वह महानगर ऊजड़ हो गया। खरगसेनजी भी सकुटुम्ब

---

१ सुलतान **सलीम**को बापने ६ मुहर्रम सन १००८ (आसोजवदी १४ संवत् १६५५) को राना **अमरसिंह**के ऊपर जानेका हुक्म दिया था, मगर वह बागी होकर इलाहाबाद चला गया और फिर बागी ही रहा।

२ **नूरम**सुलतान **कुलीच**के पीछे जौनपुरका हाकिम हुआ था।

भागनेवालोंके साथी हुए, और लछमनपुर नामक ग्राममें चौधरी लछमनदासजीके आश्रयसे जा ठहरे और विपत्तिके दिन गिनने लगे।

सलीम शाहजादा जौनपुरके पास आ पहुचा, परन्तु जब गौमती उतरने लगा, और यह विग्रह देखा, तो कुछ चिंतित हुआ और अपने वकील लालबेगको नूरमसुलतानके पास भेजा। वकीलने सुलतानके पास जाकर दश पाच नर्म गर्म बातें कहीं और शाहजादेके पास उसे ले आया। नूरमसुलतान शाहजादेके पैरोंपर पड गया, तब शाहजादेने गुनह माफ करके अभयदान दिया। नगरमें फिर शान्ति हो गई, भागे हुए लोग पुनः आ गये। खरगसेनजी भी ६-७ दिन लछमनपुरमें रहकर लौट आये, और अपने व्यवसायमें निरत हो गये।

---

१ यह विग्रह क्यों किया गया? इसका फल क्या हुआ? और शाहजादा कैसे मान गया? **तुजकजहांगीरी**की भूमिकामें जो हाल जहांगीर बादशाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे इन प्रश्नोंका समाधान हो सक्ता है। उसमें लिखा है कि, तारीख ६ महर सन् १००७ (आसोजवदी १४ सवत् १६५५) को **अकबर** बादशाह तो दक्खन फतह करनेके लिये गये और **अजमेर**का सूबा **शाहसलीम**को जागीरमें देकर **राना**को सर करनेका हुक्म दे गये। शाह**कुलीचरवां** महरम और राजा **मानसिंह**की नोकरी इनके पास बोली गई। बगालेका सूबा जो राजाको सौंपा हुआ था, राजा अपने बडे बेटे **जगतसिंह**को सौंपकर शाहकी खिदमतमें रहने लगा।

शाहसलीमने **अजमेर** आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, **उदयपुर**को गये, जिसको राना छोड गया था, और सिपाहियोंको पहाडोंमें भेजकर **राना**के पकडनेकी कोशिश करने लगे।

यहां खुशामदी और स्वार्थी लोग जो नीचे नहीं बैठा करते हैं, इनके कान भरा करते थे कि, बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुल्क एकाएकी हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी वगैर लिये पीछे आनेवाले नहीं है। इसलिये हजरत जो यहांसे लौटकर **आगरे**से परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बडे फायदेकी बात हो। बंगालेका फिसाद भी कि जिसकी खबरें आ रही हैं और जो वगैर जाने राजा **मानसिंह**के मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात **राजामानसिंह**के भी मतलबकी थी, क्योंकि उसने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस वास्ते उसने भी हांमें हां मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दी।

शाहसलीम इन बातोंसे रानाकी मुहिम अधूरी छोडकर **इलाहाबाद**को लोट गये। जब **आगरे**में पहुंचे तो वहांका किलेदार **कुलीचखां** पेशवाईको आया, उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इसको पकडलेनेसे आगरेका किला जो खजानोंसे भरा हुआ है, सहजमें ही हाथ आता है, मगर इन्होंने कुबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबासका रस्ता लिया। इनकी दादी हौदेमें बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिये किलेसे उतरी थी कि, ये नावमें बैठकर जलदीसे चल दिये और वे नाराज होकर लोट आई।

१ सफर सन् १००९ (द्वि० सावन सुदी ३ संवत् १६५७) को **शाहसलीम** इलाहाबादके किलेमें पहुचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। विहारका सूबा **कुतबुद्दीनखां**को दिया। जौनपुरकी सरकार **लालाबेग**को, और कालपीकी सरकार **नसीमबहादुरको** दी। **घनसूर** दीवानने तीन लाख रुपयेका खजाना बिहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि **शाहसलीमने** जो **लालाबेग**को जोनपुर दिया था, **नूरमसुलतान** **लालाबेग**को लेने नहीं देता होगा;

बनारसीदासजीकी वय इस समय १४ वर्ष की हो चुकी थीं, बाल्यकाल निकल गया था, और युवावस्थाका प्रारंभ था। इस समय पं० देवदत्तजीके पास पढना ही उनका एक मात्र कार्य था। धनंजयनाममालादि कई ग्रन्थ वे पढ चुके थे। यथा—

पढी नाममाला शतदोय। और अनेकारथ अवलोय।
ज्योतिष अलंकार लघुकोक। खंडस्फुट शत चार श्लोक॥

यौवनकाल।

युवावस्थाका प्रारंभ बहुत बुरा होता है, अनेक लोग इस अवस्थामें शरीरके मदसे उन्मत्त होकर कुलकी प्रतिष्ठा संपति संतति आदि सबका चौका लगा देते हैं। इस अवस्थामें गुरुजनोंका प्रयत्न मात्र रक्षाकर सक्ता है, अन्यथा कुशल नहीं होती। हमारे चरित्रनायक अपने माता पिताके इकलोते लडके थे, इसलिये माता, पिता और दादीका उनपर अतिशय प्रेम होना स्वाभाविक है। सो असाधारण प्रेमके कारण गुरुजनोंका पुत्रपर जितना भय होना चाहिये, उतना बनारसीदासजीको नहीं था। फिर क्या था?

तजि कुलकान लोककी लाज।
भयो बनारसि आसिखवाज[1]॥ १७०॥

और—

करै आसिखी धरित न धीर।
दरदवन्द ज्यों शेख फकीर
इकटक देख ध्यानसों धरै।
पिता आपुनेको धन हरै॥ १७१॥

जिसपर शाहसलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर नूरमबेगके हाजिरहोनेपर लालाबेगको वहां रख आया होगा।

१ शुद्ध शब्द इश्कबाज़ है।

चोरै चूनी माणिक मनी ।
आनै पान मिठाई घनी ॥
भेजे पेशकशी हित पास ।
आप गरीब कहावै दास ॥ १७२ ॥

हमारे चरित्रनायक जिस समय इस अनंगरंगमें सराबोर हो रहे थे, उसी समय जौनपुरमें खडतरगच्छीय यति भानुचन्द्र-जीका आगमन हुआ । यति महाशय सदाचारी और विद्वान् थे, उनके पास सैकडों श्रावक आते जाते थे । एक दिन बनारसीदा-सजी अपने पिताके साथ, यतिजीके पास गये । यतिजीने इन्हें सुबोध देखकर स्नेह प्रगट किया । बनारसीदास प्रतिदिन आने जाने लगे । पीछे इतना स्नेह बढ गया कि, दिनभर यतिके पास हीं पाठ-शालामें रहने लगे । केवल रात्रिको घर आते थे । यतिके पास पंच-संधिकी रचना, अष्टौन, सामायिक, पडिकोण (प्रतिक्रमण), छन्द-शास्त्र, श्रुतबोध, कोष और अनेक स्फुटश्लोक आदि विषय कंठस्थ पढे । आठ मूलगुण भी धारण कर लिये, परन्तु इश्क नहीं छूटा—यथा—

कबहूं आइ शब्द उर धरै ।
कबहूं जाइ आसिखी करै ।

---

१ यति भानुचन्द्रजी श्वेताम्बर थे, ऐसा जान पडता है । क्योंकि खडतरगच्छ श्वेताम्बरसम्प्रदायका ही है, और अष्टौन आदि विषय भी मुख्यतासे श्वेताम्बरीय हैं, जो कविवर ने उनके पास से पढे थे । परन्तु जान पडता है कि, उस समय दिगम्बर श्वेताम्बरोंमें आजकलके समान शत्रुभाव नहीं था ।

पोथी एक बनाई नई ।
मित हजार दोहा चोपई ॥ १७८ ॥
तामें नवरस रचना लिखी ।
पै विशेष वरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि **बनारसि** भये ।
मिथ्या ग्रन्थ बनाये नये ॥ १७९ ॥
के पढना के आसिखी, मगन दुहूंरसमाहिं ।
खानपानकी सुधि नहीं, रोजगार कछु नाहिं ॥१८०॥

विद्या और अविद्यारूपइश्क इनदोनोंकी संयोगरूप विचित्र भंवरमें भ्रमते हुए बनारसीकी आयुके दो वर्ष इस प्रकार शीघ्र ही बीत गये । १५ वर्ष १० माह की वयमें पाउजा (गौंना, मुकलावा) करनेके लिये उन्हें खैराबाद जाना पडा । बडे ठाठबाटसे ससुरालमें पहुंचे । ससुरालके प्रेमयुक्त आदर सत्कारमें एक मास बीत गया । इतनेहीमें पूर्व कर्मके अशुभ उदयसे पौषमासके शुक्लपक्षमें श्वसुरगृहवासी बनारसीके चन्दविनिन्दित शरीरको कुष्ट राहुने आकर घेर लिया, युवावस्थाका मनोहरशरीर ग्लानिपूर्ण हो गया । लोग देख २ के नाक भौंह सिकोडने लगे । विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड दिया । यथा—

भयो **बनारसिदास** तन, कुष्टरूप सरवंग
हाड़ हाड़ उपजी वृथा, केश रोम भ्रुवभंग ॥ १२५ ॥
विस्फोटक अगनित भये, हस्त चरण चौरंग ।
कोऊ नर साले ससुर, भोजन करहिं न संग ॥ १२६॥

ऐसी असुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥१२७॥

खैराबादमें एक नाई कुष्टरोगका धन्वन्तरि था । वह बनारसीकी टहल चाकरी और साथ ही औषधि करता था । उसने दो महीने जी तोड़ परिश्रम करके हमारे चरित्रनायकके राहुग्रसित शरीरको संसारके गगनमंडलपर पुनः निर्मल प्रकाशित कर दिया । नाईको यथोचित दान देकर स्वास्थ्यलाभ करके बनारसदासजी घरको लौटे। परन्तु साससुरने अपनी लडकीकी विदाई नहीं की । घर आके—

आय पिताके पद गहे, मा रोई उर ठोकि ।
जैसी चिरी कुरीजकी, त्यों सुतदशा विलोकि ॥
खरगसेन लज्जित भये, कुवचन कहे अनेक ।
रोये बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ १९५ ॥

दश पांच दिनके पश्चात्; फिर पाठशालामें पढनेको जाने लगे और—

"कै पढ़ना कै आसिखी, पहिली पकरी चाल ।"

खरगसेनजी इसी समय व्यापारके निमित्त पटनेको चले गये । चार महीने बीत जानेपर बनारसीदासजी फिर ससुरालको गये, और भार्याको लेकर घर आ गये । अब आप गृहस्थ हो गये, इस कारण गुरुजन उपदेश देने लगे ...

गुरुजन लोग देहिं उपदेश ।
आसिखबाज सुनें दरवेश ॥
बहुत पढ़ैं बामन अरु भाट ।
वनिक पुत्र तो बैठें हाट ॥

बहुत पढ़ैं सो मांगें भीख ।

मानहु पूत ! बड़ोंकी सीख ॥ २०० ॥

परन्तु गुरुजनोंके वचनवृन्दरूप ओसके कनूके बनारसीके हृदय-कमलपर उन्मत्तताकी प्रबल वायुके कारण कब ठहरनेवाले थे? बढते हुए यौवन-पयोधिके प्रवाहको क्या कोई रोक सक्ता है? सबका कहा सुना इस कानसे सुना और उस कानसे निकाल दिया, फिर हल्केके हलके हो गये । गुरुजीसे विद्या पढना और इश्कबाजी करना ये दो कार्य ही उन्हें सुखके कारण प्रतीत होते थे । मतिके अनुसार गति हुआ करती है । कुछ दिनके पीछे विद्या पढना भी बुरा जँचने लगा । ठीक ही है, विद्या और अविद्याकी एकता कैसी! संवत् १६६० में पढना छोड दिया । इस संवत् में आपकी बहिनका विवाह हुआ और एक पुत्रीने[1] जन्म लिया । पुत्री ६-७ दिन रहके चल बसी । विदाईमें पिताको बीमार करती गई । बनारसीदासजीको बडी भारी बीमारी लगी । बीस लंघनें करनी पडीं । २१ वें दिन वैद्यने और भी १०-५ लंघनें करानेकी बात कही, और यहां क्षुधाके मारे प्राण जाते थे, तब एक विचित्र रंग खेला, रात्रिको घर सूना पाकर आप आधसेर पूरी चुराके उडा गये !! । आश्चर्य है कि, वे पूरी आपको पथ्यका काम कर गई, और आप शीघ्र ही निरोग हो गये । इसी संवत्में खरगसेनजीने एक बडा भारी व्यापार किया, जिसमें कि सौगुणा लाभ हुआ! सम्पत्तिसे घर भर गया ।

संवत् १६६१ में एक संन्यासी देवता आये । उन्होंने बडे आदमीका लडका समझके बनारसीको फँसानेके लिये जाल वि-

१ इस पुत्रीका नाम टिप्पणीमें वीरबाई लिखा है ।

छाया । जाल काम कर गया । बनारसी फांस लिये गये । सन्यासीने रंग जमाया कि, मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि, यदि कोई उसे एक वर्षतक नियमपूर्वक जपै, तथा किसीपर प्रगट न करै, तो साल बीतनेपर गृहद्वारपर प्रतिदिन एक सुवर्णमुद्रा पडी हुई पावै। इश्कबाजोंको द्रव्यकी बहुत आवश्यकता रहती है । इस कल्पद्रुम मंत्रकी बातसे उनकी लाल टपक पडी । लगे सन्यासीकी सेवा सुश्रूषा करने, उधर सन्यासी लगा पैसे ठगनेकी बातें बनानें। निदान भरपूर द्रव्य खर्च करके सन्यासीसे मंत्र सीख लिया, और तत्काल ही जप करना प्रारभ कर दिया । इधर सन्यासीजी मौका पाकर नौ दो ग्यारह हो गये । मंत्र जपते २ एक वर्ष बडी कठिनतासे पूर्ण हुआ । प्रातःकाल ही स्नान ध्यान करके बनारसी महाशय बडी उत्कंठासे प्रसन्न होते हुए गृहद्वारपर आये । लगे जमीन सूंघने, परन्तु वहां क्या खाक पडी थीं? । आशा बुरी होती है, सोचा कि कहीं दिन गिननेमें मेरी भूल न हो गई हो, अस्तु एक दो दिन और सही । और भी चार छह दिन सिर पटका परन्तु मुहर तो क्या फूटी कौडी भी नहीं मिली । सन्यासीकी तरफसे अब कुछ २ आंखें खुली । आपने एक दिन यह अपनबीती गुरु भानुचंद्रजीको कह सुनाई । गुरूजीने सन्यासीके छल कपटोंको विशेष प्रगट कर कहा, तब आप सचेत हुए ।

थोडे दिन पीछे एक जोगीने आकर अपना एक दूसरा ही रंग जमाया । एक बार शिक्षा पा चुके थे, परन्तु भोले बनारसीपर फिर भी रंग जमते देर न लगी । जोगीने एक शंख तथा कुछ पूजनके उपकरण दिये और कहा कि, यह सदाशिवकी मूर्ति है । इसकी पूजासे महापापी भी शीघ्र ही शिव (मोक्ष) प्राप्त करता

है। मोले बनारसीने जोगीकी बात सिर आंखोंसे मान ली और जोगीकी सेवा सुश्रूषा करना शुरू कर दी। यथायोग्य भेंटादि देके उसे खूब सतुष्ट किया। दूसरे दिनसे ही सदाशिवकी पूजन होने लगी। पूजनके पश्चात् शिव शिव–कहकर एकसौआठ बार जप भी होने लगा। पूजन और जपमें इतनी श्रद्धा हुई कि, पूजन जप किये बिना भोजन नहीं होते थे। यदि किसी कारणवश किसी दिन पूजन नहीं की जा सके, तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप लूखा भोजन करनेकी प्रतिज्ञा थी। परन्तु ध्यान रहै, यह पूजन गुप्तरूपसे होती थी, कोई गृहकुटुम्बी जानता भी नहीं था। अनेक दिनों यह पूजन होती रही। संवत् १६६१ में सुकीम हीरानंदजी ओसवालने शिखरजीको संघ चलाया, गांव २ नगर २ में संघकी पत्रिकायें भेज दीं। हीरानंदजी सलीम शाहजादेके जौहरी थे, अतः उस समय इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। खरगसेनजीके पास हीरानंदजीका विशेष पत्र आया, इसलिये ये गंगाके किनारे हीरानंदजीसे मिले और हीरानंदजीके आग्रहसे वहींके वहीं यात्राको चले गये। जब यह समाचार बनारसीको लगे; तब उन्होंने घर सूना पाकर चैनकी गुड्डी उड़ाना शुरू किया। पिताके जानेपर पूत निरंकुश हो गये, और नित्य घरमें कलह मचाने लगे। एक दिन बैठे २ एक सुबुद्धि सूझी कि, पार्श्वनाथकी यात्राको चलना चाहिये। मातासे आज्ञा मांगी, परन्तु जब उसने सुनी अनसुनी कर दी, तब आपने दही, दूध, घी, चावल, चना, तैल, ताम्बूल और पुष्पादि पदार्थोंको छोड दिया, और प्रतिज्ञा की कि, जब तक यात्रा नहीं करूंगा, तब तक ये पदार्थ भोगमें नहीं लाउंगा। इस प्रतिज्ञाको ६ महीनें बीत गये। कार्तिकी पूर्णिमा आ गई। शैव लोग गंगास्नानको और जैनी पार्श्वनाथकी यात्राको चले,

तब बनारसी भी अवसर पाकर किसीसे बिना पूछेताछे उनके साथ हो लिये । बनारसमें पहुंच कर गंगास्नान पूर्वक भगवान् पार्श्वसुपार्श्वकी पूजन दशदिन तक बड़े हावभावसे की । स्मरण रहे कि, सदाशिवकी पूजन वहां भी छोड़ नहीं दी थी, वह नियमसे होती थी । यात्रा करके संखोली लिये हुए बड़े हर्षके साथ घर आ गये । कविवरने अपने जीवनचरित्रमें सदाशिवपूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालंकारमें इस प्रकार कहा है....

शंखरूप शिव देव, महाशंख बानारसी ।
दोऊ मिले अबेच, साहिब सेवक एकसे ॥ २३७ ॥

रेलेतारके कारण जैसी आजकलकी यात्रा सरल हो गई है, ऐसी उस समय नहीं थी । जो यात्रा आज १० दिनमें पूरी हो जाती है, उस समय उसमें १ वर्ष बीत जाता था । अतः मुकीम हीरानन्दजीका संघ बहुत दिनके पीछे लौटके आया । आते २ अनेक लोग मर गये, अनेक बीमार हो गये, और अनेक लुट गये । खरगसेनजीको उदर रोगने घर दबाया । ज्यों त्यों बड़ी कठिनतासे संघके साथ अपने घर जौनपुर तक आये । जौनपुरमें संघका खरगसेनजीकी ओरसे यथोचित आतिथ्यसत्कार किया गया, पश्चात् यहींसे संघ बिखर गया, सब लोग अपने २ ग्राम नगरोंकी राह लग गये—

संघ फूटि चहुंदिशि गयो, आप आपको होय ।
नदी नाव संजोग ज्यों, बिछुर मिलै नहिं कोय २२३

खरगसेनजी घर रहकर धीरे २ स्वास्थ्य लाभ करने लगे । हाट-बाजारमें जाने आने लगे और पश्चात् प्रसन्नतासे रहने लगे । यात्रासे आनेके पहिले आपके एक पुत्रने जन्म लिया था, परन्तु वह दो

चार दिनसे अधिक नहीं ठहरा। इसी समय बनारसीदासके पुत्र हुआ। परन्तु उसकी भी वही दशा हुई।

संवत् १६६२ के कार्तिकमें बादशाह जलालुद्दीन अकबरकी मृत्यु आगरामें हो गई। यह खबर जिस समय जौनपुरमें आई, प्रजाके हृदयमें असीम व्याकुलताका उदय हुआ। इस व्याकुलताके अनेक कारण थे। एक तो आजकलकी नाईं उस समय एक सम्राट्का शरीरपात हो जानेपर दूसरा सम्राट् शान्तिताके साथ राज्यासनपर नहीं बैठ सक्ता था। बिना खूनखराबी हुए तथा प्रजापर नाना अत्याचार हुए बिना बादशाहत नहीं बदलती थी। दूसरे मुसलमानोंमें अकबर सरीखे प्रजाप्रिय बादशाह बहुत थोडे होते थे। यद्यपि अकबरकी राजनीति अतिशय कूट कही जाती है, परन्तु प्रजा उसके राजत्वकालमें दुःखी नहीं रही, यह निश्चय है। आज उस प्रजावत्सल नरनाथकी परलोकयात्रासे प्रजा अनाथ हो गई। चारों ओर कोलाहल मच गया। लोगोंको विपत्ति मुंह फाडके भय दिखाने लगी। सबने अपनी २ जमा पूंजीकी रक्षामें चित्त लगाया–

घर घर दर दर दिये कपाट।
हटवानी नहिं बैठें हाट।
हँडवाई (?) गाडी कहुं और।
नकद माल निरभरमी ठौर॥

---

१ अकबरका देहान्त कार्तिक सुदी १४ संवत् १६६२ मंगलवारकी रात्रिको हुआ था, और दूसरे दिन बुधवारको उत्तरक्रिया हुई थी।

भले वस्त्र अरु भूपन भले ।
ते सव गाढ़े धरती तले ॥
घर घर सवनि विसाहे शस्त्र ।
लोगन पहिरे मोटे वस्त्र ॥
ठाढ़ो कंवल अथवा खेस ।
नारिन पहिरे मोटे वेस ॥
ऊंच नीच कोउ न पहिचान ।
धनी दरिद्री भये समान ॥
चोरि धाड़ दीसै कहुं नांहि ।
यों ही अपभय लोग डराहिं ॥ २५५ ॥

यह अशान्तिकी हवा दश बारह दिन बडे जोर शोरसे चलती रही। तेरहवें दिन शान्तिसूचक वादशाही चिट्ठियां आईं और घर २ बांट दी गईं। चिट्ठियां बांटते ही अशान्तिने विदा ले ली। सन्नाटा खिंच गया। घर २ जयजयकार होने लगा। जो धनी और गरीबोंका भेद उठ गया था, वह अब फिर आ डॅटा। धनियोंके वस्त्र वेप चमचमाने लगे, बेचारे दरिद्री भीख मांगते हुए नजर आने लगे। चिट्ठीमें समाचार इस प्रकार थे–

प्रथम पातशाही करी, वावनवरप जलाल[१] ।
अब सौलहसै वासठै, कार्तिक हूओ काल ॥
अकवरको नन्दन वड़ो, साहिव शाह सलेम ।
नगर आगरेमें तखत, वैठो अकवर जेम ॥ २६८ ॥

१ अकवरका नाम जलालउद्दीन था।

नाम धरायो नूरदी, जहांगीरसुलतान ।
फिरी दुहाई मुलकमें, जहँ तहँ वरती आन ॥२६९॥

कविवर बनारसीदासजीका हृदय बहुत कोमल था, वे अकबरके धर्मरक्षादि गुण सुनकर बहुत प्रशंसा किया करते थे। अकबरकी मृत्युकी खबर जिस समय जौनपुर आई, उस समय ये घरकी सीढ़ीपर बैठे हुए थे, सुनते ही मूर्च्छा आ गई। शरीर सीढीसे नीचे ढुलक गया, माथा फूट गया, खून बहने लगा और उसमें कपडे सराबोर हो गये। माता पिता दौडे हुए आये, पुत्रको गोदमें उठा लिया। पंखा करके पानीके छींटे डालके मूर्च्छा उपशान्ति की गई; घावमें कपडा जलाके भर दिया गया। थोडे समयमें अच्छे हो गये। नवीन बादशाहके तिलककी खुशीमें घर २ उत्सव मनाया गया। राज्यभक्त प्रजाने भिखारियोंको बहुत सा दान दिया।

पाठकोंको स्मरण रहे कि, अभी तक सदाशिवकी पूजन निरंतर हुआ करती थी, उसमें बनारसीने कभी भूल नहीं की। उस दिन एकान्तमें बैठे २ सोचने लगे।...

जब मैं गिर्यो पर्यो मुरझाय।
तब शिव कछु नहिं करी सहाय! ॥

इस विकट शंकाका समाधान जब उनके हृदयमें न हुआ, तब उन्होंने सदाशिवजीका आसन कहीं अन्यत्र लगा दिया, और पूजन करना छोड दिया। बनारसीके नानारसी हृदयने इस समयसे ही पलटा खाया। उनके शरीरमेंसे बालकपन कभीका निकल गया था। युवावस्था विराजमान थी। विद्यादेवीने युवावस्थाकी सहचरी उन्मत्ततासे बहुत झगडा मचा रक्खा था, परन्तु कुसंगति और

स्तंत्रताके कारण वह विजयलाभ नहीं कर सकी थी । अब स्तंत्रता गृहजंजालको देखके रफूचक्कर हो गई थी, वेचारी कुसंगतिको सदा साथ रहनेका अवकाश नहीं था । अतएव विद्यादेवी अपना काम कर गई । उसने कोमल हृदयमें कोमल शान्तिरसका बीज बो दिया । कविवर बनारसीदासजीके पास अब केवल शृंगाररसका गुजारा नहीं रहा ।

एक दिन संध्याके समय गोमती नदीके पुलपर बनारसीदास अपनी मित्रमंडलीके साथ समीरसेवन कर रहे थे, और सरिताकी तरल–तरंगोको चित्तवृत्तिकी उपमा देते हुए कुछ सोच रहे थे । बगलमें एक सुन्दर पोथी दब रही थी । मित्रगण भी इस समय चुपचाप नदीकी शोभा देख रहे थे । कविवर आप ही आप बडबडाने लगे "लोगोंसे सुना है कि, जो कोई एक बार भी झूठ बोलता है, वह नरकनिगोदके नाना दुःखोंका पात्र होता है । परन्तु न जाने मेरी क्या दशा होगी, जिसने झूठका एक पुंज बनाके रक्खा है । मैंने इस पोथीमें स्त्रियोंके कपोलकल्पित नखशिख हावभाव विभ्रमविलासोंकी रचना की है । हाय! मैंने यह अच्छा नहीं किया-मैं तो पापका भागी हो ही चुका, अब परंपरा लोग भी इसे पढकर पापके भागी होंगे" । इस उच्चविचारने कविवरके हृदयको डगमगा दिया । वे आगे और विचार नहीं कर सके, और न किसीकी सम्मतिकी प्रतीक्षा कर सके । तत्क्षण गोमतीके उस अथाह और भीषण–वेगयुक्तप्रवाहमें उस रसिकजनोंकी जीवनरूपा स्वकृत नव्य-निर्मित पोथीको डालकर निश्चिंत हो गये । पोथीके पन्ने अलग २ होकर बहने लगे, और मित्र हाय २ करने लगे, परन्तु फिर क्या होता था? गोमतीकी गोदमेंसे पोथी छीन लेनेका किसीने साहस नहीं

किया। सब लोग मन मारके अपने २ घर चले आये। कविवर भी प्रसन्नतासे अपने घर गये। पाठक! एक बार विचार कीजिये, अमूल्य-रस-रत्नको इस प्रकार तुच्छ समझके फेंक देना और तत्काल विरक्त हो जाना, क्या रसिकशिरोमणिकी सामान्य उदारता हुई? नहीं! यह कार्य बड़ी उदारहृदयता और स्वार्थत्यागका हुआ। उस दिनसे कविवरने एक नवीन अवस्था धारण की—

तिस दिनसों बानारसी, करी धर्मकी चाह।
तजी आसिखी फांसिखी; पकरी कुलकी राह॥

खरगसेनजी पुत्रका उक्त वृत्तान्त सुनकर बहुत हर्पित हुए। उन्हें आशा हो गई कि, मेरे कुलका नाम जैसा आज तक रहा है, वैसा आगे भी रहेगा। पुत्रकी पूर्वावस्थासे साम्प्रत अवस्थाका मिलान कर वे चकित हो गये। निश्चय किया कि,—

कहैं दोप कोउ न तजै, तजै अवस्था पाय।
जैसे बालककी दशा, तरुण भये मिट जाय॥२७२॥

और—

उदय होत शुभकर्मके, भई अशुभकी हानि।
तातें तुरत बनारसी, गही धर्मकी बानि॥ २७३॥

थोड़े ही समयमें क्या से क्या हो गया। जो बनारसी संसारके एक क्लेशजन्यरसके रसिया थे, वे ही अब जिनेन्द्रके शान्तरसके वशमें हो गये। अडौस पडौसके लोग तथा कुटुम्बीजन जिनको कल गली कूचोंमें भटकते देखते थे, आज उसी बनारसीको जिन-मन्दिरको अष्टद्रव्ययुक्त जाते देखते हैं। जिनदर्शन किये बिना

१ आशिकी। २ फासिकी अर्थात् पापकर्म।

भोजनके त्यागकी प्रतिज्ञायुक्त देखते हैं। चतुर्दश नियम, व्रत, सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमणादि नाना आचार–विचार–युक्त देखते हैं। और देखते हैं, सच्चे हृदयसे सम्पूर्ण क्रियाओंको करते। स्वभावका इस प्रकार पलटना बहुत थोड़ा देखा जाता है।

तब अपजसी बनारसी,
अब जस भयो विख्यात ॥

खरगसेनजीके दो कन्या थी, जिसमेंसे एक तो जौनपुरमें विवाही गई थी, दूसरी कुमारी थी। इस वर्ष अर्थात् संवत् १६६४ के फाल्गुणमासमें पाटलीपुर (पटना)में किसी धनिकके पुत्रसे उसका भी विवाह कर दिया गया। कन्याका विवाह सानन्द हो चुकनेपर इसी वर्ष—

बानारसिके दूसरो; भयो और सुतकीर।
दिवस कैकुमें उड़ि गयो, तज पिंजरा शरीर ॥ २८० ॥

[illegible] पोतेके मरनेसे खरगसेनजीको विशेष दुःख रहा। परन्तु नि[illegible]लक पुत्रके रंग ढंग अच्छे रहे, यह देखकर उन्हें बहुत कुछ मैं [illegible]पके मिलता रहा। संवत् १६६७में एक दिन खरगसेनजीने पापवे[illegible]गी घरमें बुलाके कहा "बेटा! अब तुम मयाने हो गये। दिया [illegible] आगे आया। पुत्रोंका धर्म है कि, योग्य-वय-प्राप्त होनेपर प्रतीक्षा [illegible] सके। इस लिये अब तुम यह घरका सब कार्यभार वेगयुक्त [illegible]में उस [illegible]को रोटी खिलाओ" यह सुनके पुत्र लज्जावनत निर्मित [illegible]ो डालक नहीं गया। पिताका प्रेम देखके आंखोंमें आसूं होकर यह [illegible]गे, और मित्रने अपने हाथसे पुत्रको गोदमें लेके हरि-होता था[illegible]तीकी गोदमेंसे घरका सब काम सौंप दिया। पीछे

दो मुद्रिका, चौवीस माणिक, चौतीस मणि, नौ नीलम, वीस पन्ना, और चार गांठ फुटकर चुनी, इस प्रकार तो जवाहिरात, और २० मन घीव, दो कुप्पे तैल, दो सौ रुपयाका कपडा इस प्रकार माल और कुछ नकद रुपया देकर व्यापारके लिये आगराको जानेकी आज्ञा दी। पुत्रने आज्ञा शिरोधार्य करके सब माल गाड़ियोंपर लदाके अनेक साथियोंके साथ आगरेकी यात्रा कर दी। प्रतिदिन ५ कोसके हिसाबसे चलके गाड़ियां इटावाके निकट आई, वहां मंजिल पूरी हो जानेसे एक ऊजड़ स्थानमें डेरा डाल दिया। थोड़े समय विश्राम कर पाये थे, कि मेघ उमड़ आये, अंधकार हो गया, और लगा मूसलधार पानी बरसने। साथके सब लोग गाड़ियां छोड़के इधर उधर भागने लगे। कुछ लोग पयादे होकर शहरकी सरायमें गये, परन्तु सरायमें कोई उमराव ठहरे हुए थे, इससे स्थान खाली नहीं मिला। बाजारमें भी कोई जगह खाली नहीं देखी, आंधी और मेघकी झड़ीके मारे घर २ के कपाट बन्द थे, कहीं खडे होनेका भी ठिकाना नहीं पडा। कविवर कहते हैं—

फिरत फिरत फावा भये, बैठन कहै न कोय।
तलैं कीचसों पग भरें, ऊपर बरसत तोय॥ २९४॥
अंधकार रजनी विषैं; हिमरितु अगहनमास।
नारि एक बैठन कह्यो; पुरुष उठ्यो लै बाँस!॥ २९६॥

नगरमें जब रातनिकालनेका कहीं भी ठीक न पडा, तब लाचार होके गोपुरके पार एक चौकीदारकी झोपडी थी, वहां आये, और चौकीदारोंको अपनी सब आपत्ति कह सुनाई। चौकीदारोंका

हृदय इन बेचारोंकी कथा सुनके पिघल आया । उन्होंने कहा अच्छा आज रातभर आप लोग यहा आनन्दसे रहो, हम अपने घर जाके सोवेंगे । परन्तु इतना ध्यान रखना कि, सबेरे नगरका हाकिम आवेगा, वह विना तलाशी लिये नहीं जाने देगा, इस लिये उसे कुछ दे लेके राजी कर लेना । चौकीदार चले गये, इन लोगोंने पानी लाके हाथ पैर धोये, गीले कपडे सूखनेको डाल दिये और प्याल बिछाके सबके सब विश्रामकी चिन्तामें लगे । लोगोंकी आखें झपती ही जाती थीं, कि इतनेमें एक जबर्दस्त आदमी आया, और लगा डाट डपट बतलाने । तुम लोग किसके हुक्मसे यहा आये? कौन हो? यहासे अब शीघ्र चले जाओ, नहीं तो अच्छा नहीं होगा इत्यादि । इस नवीन आपत्तिसे भयभीत होके बेचारे उठ बैठे, और विना कुछ कहे सुने चलने लगे । परन्तु इन लोगोंकी तत्कालीन दशा देखके पत्थर भी पसीजता था, नवागन्तुक तो आदमी ही था । इनके सीधेपनको देखके उससे न रहा गया, जाते हुए लौटा लिया और अपना एक टाट बिछानेको दे दिया । चौकीमें जगह इतनी थोडी थी कि, सोना तो दूर रहा, चार आदमी सुभीतेसे बैठ भी नहीं सकते थे । तब टाटपर नीचे तो दुखिया बनारसी तथा उनके साथी सोये और ऊपर खाट बिछाके नवागन्तुक अपने पाव फैलाके सोया! समय पडनेपर इतनी ही गनीमत है! ज्यों त्यों रात्रि पूरी हो गई, सबेरे देखा तो, वर्षा बंद हो चुकी थी, आकाश निखरके निर्मल हो गया था । उठके अपनी २ गाडियोंपर आये, और मार्गका सुभीता देखके गाडी चला दीं । आगरा निकट आ गया । बनारसीदासजी सोचने लगे, कहा जाना चाहिये? माल कहा उतराना चाहिये? और मुझे कहा ठहरना चाहिये? क्योंकि उन्हें

व्यापारके लिये घरसे बाहिर निकलनेका यह पहिला ही अवसर था। निदान चित्तमें कुछ निश्चय करके गाडियोंको पीछे छोड आप मोतीकटलेमें पहुंचे। आपके छोटे बहनेउ, बन्दीदासजी चांपसी- के घरके पास रहते थे, उन्हींके यहां गये। बहनेऊने सालेका यथोचित सत्कार किया। दो चार दिनमें बहनेऊकी सम्मतिसे एक दूसरा मकान किराये से लिया और उसमें सब माल असबाब रखके बेचना खर्चना आरंभ कर दिया।

पहिले कपडा बेचके उसका हिसाब तयार किया तो, व्याजमूल देके कुछ घाटा रहा, पश्चात् घीव तैल बेचा, उसका भी यही हाल हुआ, केवल चार रुपया लाभमें रहे। कपडा और घी तैलकी विक्रीका रुपया हुंडीसे जौनपुर भेज दिया और सबके पीछे जवाहि- रातपर हाथ लगाया। बनारसीदास व्यापारसे अभी तक एक तो प्रायः अनभिज्ञ थे, दूसरे आगरेका व्यापार!। अच्छे २ ठगा जाते है, इनकी तो बात ही क्या थी। जिस तिसको साधु असाधुकी जांच किये विना ही आप जवाहिरात दे देते थे, और उसके साथ जहां चाहे तहां चले जाते थे। जौहरियोंके लिये यह वर्ताव बड़े धोखेका है। परन्तु अच्छा हुआ कि, किसी लुचे लफंगेकी दृष्टि नहीं पड़ी। तौ भी अशुभ कर्मका उदय था, इजारबन्दके नारेमें कुछ छूटा जवाहिरात बांध लिया था, वह न मालूम कहां खिसककर गिर गया। माल बहुत था, इससे चोट भी गहरी लगी, परन्तु किसीसे कुछ कहा नहीं। आपत्तिपर आपत्तियां प्रायः आती हैं। किसी कपड़ेमें कुछ माणिक बंधे थे, वे डेरेमे रक्खे थे उन्हें चूहे कपडे समेत ले गये। दो जडाऊ पहुंची किसी शेठको बेचीं थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया। एक जडाऊ मुद्रिका थी, वह

सडकपर गांठ लगाते हुए नीचे गिर पडी, परन्तु जब नीचे देखा तब कुछ भी पता नहीं लगा, न जाने किस उठाईगीरेके हाथमें सफाईसे पड़ गई। इन एकपर एक आई हुई अनेक आपत्तियोंसे बनारसीका कोमलहृदय कम्पित हो गया। और संध्याको खूब जोरसे ज्वर चढ-आया। चिन्ताके कारण बीमारी बढ गई। वैद्यने दश कोरी लंघनें कराई, पीछेसे पथ्य दिया। पथ्यके पश्चात् अशक्तिताके कारण महीने भर तक बाजारका आना जाना नहीं हुआ। इस बीचमें पिताके अनेक पत्र आये, परन्तु किसीका भी उत्तर नहीं दिया। तो भी बात छुपी नहीं रही। उत्तमचन्द जौहरी जो आपके बडे बहनेऊ थे, उन्होंनें खरगसेनजीको अपने पत्रमें लिख भेजा कि, **बनारसीदास** जमा पूजी सब खोके भिखारी हो गये हैं!। इस खबरसे खरगसेनजीके घरमें रोना पीटना होने लगा। उन्होंने अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे **बनारसीको** घरका मौर बांधा था, इसलिये स्त्रीसे कलह पूर्वक कहने लगे कि "मैं तो पहिले ही जानता था कि, पूत धूल लगावेगा, परन्तु तेरे कहनेसे तिलक किया था, उसका यह फल हुआ—

कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत।
पूंजी खोई वेहया, गया वनज गय सूत ॥ ३३१ ॥

यहां बनारसीदासजी जो कुछ वस्तु पासमें थी, सो सब बेच २ के खाने लगे, और इसतरह जब पासमें केवल दो चार टके रह गये, तब हाट बाजारका जाना भी छोड दिया। दिन व्यतीत

करनेके लिये मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको डेरेमें बैठे हुए पढा करते थे। पोथियोंको सुननेके लिये दो चार रसिक-पुरुष भी पास आ बैठते थे, और प्रसन्न होते थे। श्रोताओंमें एक कचौडीवाला था, उसके यहांसे आप प्रतिदिन दोनों वक्त कचौडी उधार लेके खाया करते थे। जब उधार खाते २ बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन पोथी सुनकर जाते हुए कचौडीवालेको एकान्तमें बुलाकर लज्जित होते हुए आपने कहा कि,—

तुम उधार कीन्हों बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहांसों लेहु? ॥

१ मृगावती यह एक कल्पित कथा है। इसके बनानेवाले कविका नाम कुतुबन था। कुतबन जातिके मुसलमान थे और विक्रम संवत् १५६० के लगभग विद्यमान थे। शेख बुरहानके दो चेले थे, एक कुतुबन और दूसरा मलिक मुहम्मदजायसी। ये दोनों ही हिन्दीके अच्छे कवि हो गये हैं। मलिक मुहम्मदजायसीका पद्मावतकाव्य हिन्दीमें एक उत्कृष्ट श्रेणीका ग्रन्थ है। यह काव्य मृगावतीसे ३७ वर्ष पीछे बनाया गया है। मृगावतीकी कथा जिस प्रकार देव और परियोंकी असम्भववार्तोंसे भरी है, उस प्रकार पद्मावतकी कथा नहीं है। पद्मावत ऐतिहासिक कथाके आधारपर लिखा गया है, और मृगावती केवल कल्पनाका प्रबन्ध है। परन्तु मृगावती कल्पितप्रबन्ध होनेपर भी सुन्दरता और सरलतासे कूट २ कर भरा है, इससे रसिकोंका जी उसे विना पढे नहीं मानता। विपत्तिके समय कविवरके चित्तको इससे अवश्य विश्राम मिलता होगा। कुतुबन जौनपुरके बादशाह शेरशाहसूरके पिता हुसेनशाहके आश्रित थे, ऐसा समालोचक भाग ३ अंक २७-२८-२९ में प्रकाशित हुआ है, परन्तु शेरशाहको हुसैनशाहका बेटा बतलानेमें भूल हुई जान पडती है। क्योंकि शेरशाहका जौनपुरके हुसैनशाहसे कुछ

कचौरीवाला भला आदमी था, वह जानता था कि, बनारसीदास कोई अविश्वस्त पुरुष नहीं है, किन्तु एक विपत्तिका मारा हुआ व्यापारी है । उसने कहा कि, कुछ चिन्ताकी बात नहीं है । आप उधार लेते जावें, मेरे द्रव्यकी परवाह न करें, और जहां जी चाहे, आवें जावें । समयपर मेरा द्रव्य वसूल हो जावेगा । इस सज्जनकी बातका बनारसीदास और कुछ उत्तर न दे सके, और पूर्वोक्त क्रमसे दिन काटने लगे । छह महीने इसी दशामें बीत गये । एक दिन मृगावतीकी कथा सुननेको ताबीताराचन्दजी नामके एक पुरुष आये । यह रिश्तेमें बनारसीदासजीके श्वसुर होते थे । कथाके हो चुकनेपर उन्होंने बनारसीदासजीसे पहिचान निकालके बड़ा स्नेह प्रगट किया और एकान्तमें ले जाके प्रार्थना की कि, कल प्रभातकाल

सम्बन्ध नहीं था । वह शूर जातिका पठान था और उसका असली नाम फरीद, बापका हसन और दादाका इब्राहीम था । इब्राहीम घोड़ोंका व्यापार करता था, परन्तु उसका बेटा हसन व्यापार छोड़के सिपाही बना और बहुत दिनोंतक रायमल शेखावतकी नौकरी करता रहा । वहांसे सुलतान सिकन्दर लोदीके अमीर नसीरखांके पास नौकर रहा । फरीद बापसे रूठकर पहिले लोदी पठानों और फिर बाबरबादशाहके मुगल अमीरोंके पास रहा । बाबरने इसकी आखोंमें फसाद देखकर पकड़नेका हुक्म दिया, जिससे वह भागकर सहसमके जंगलोंमें लूट मार करने लगा । फिर विहार और बंगालेका मुल्क दबाके २ हुमायू बादशाहसे लड़ा और उनको निकालके संवत् १६९७ में हिन्दुस्थानका बादशाह बन बैठा ।

२ **मधुमालती** हमारे देखनेमें नहीं आई, इसके बनानेवाले कवि **चतुर्भुजदासनिगम** (कायस्थ) हैं । इस ग्रन्थकी रचना भी संवत् १६०० के लगभग हुई जान पड़ती है । मधुमालतीकी श्लोकसंख्या १२०० है । कहते हैं कि, यह एक प्राचीनपद्धतिका पद्यबन्ध उपन्यास है ।

मेरे घरको आप अवश्य ही पवित्र करें। ऐसा कहकर चले गये और दूसरे दिन फिर लिवानेको आ पहुंचे। बनारसीदासजी साथ हो लिये, इधर श्वसुर महाशय अपने एक नौकरको गुप्तरीतिसे आज्ञा दे गये कि, तू इस मकानका भाडा वगैरह चुकाकर और डेरा डंडा उठाकर अपने घर पीछेसे ले आना। नौकरने आज्ञाकी पूरी २ पालना की। भोजनोपरान्त बनारसीदासजीपर जब यह बात प्रगट हो गई, तब श्वसुरने हाथ जोडके कहा कि, इसमें आपको दुःखी नहीं होना चाहिये। यह घर आपका ही है, आप यदि प्रसन्नतासे रहें, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊंगा। संकोची बनारसीदासजी कुछ कर न सके और श्वसुरालयमें रहने लगे। दो महीने बीत गये। व्यापार करनेकी चिन्ता रात्रि दिन सताती रही, निदान धरमदास जौहरीके साझेमें व्यापारका प्रयत्न किया। जसू और अमरसी दो भाई थे, यह जातिके ओसवाल थे। अमरसीका पुत्र धरमसी अथवा धरमदास जौहरी था। धरमसीका चालचलन अच्छा नहीं था, थोडीसी उमरमें ही उसके पीछे अनेक व्यसन लग चुके थे। इन व्यसनोंसे पीछा छुडानेके लिये ही बनारसीदासजीकी संगति उसके बापने तजवीज की और निरन्तर समागम रखनेके लिये ५००) की पूंजी देकर दोनोंको सांझी बना दिया।

दोनों साझी माणिक, मणि, मोती, चुनी आदि खरीदने और बेचने लगे। कुछ दिनोंमें जब बनारसीदासजीने थोडासा द्रव्य क-

१-२ ये दोनों नाम कच्छी तथा गुजरातीसे जान पडते हैं। उस समय आगरा राजधानी थी, इससे वहां भिन्न २ प्रान्तवालोंने आकर दूकाने की थीं।

माया, तब कचौरीवालेका हिसाब कर उसके रुपया चुका दिये । कुल १४) चौदह रुपयाका जोड़ हुआ। पाठको! वह कैसा समय था, जब आगरे सरीखे शहरमें भी दोनो वक्तकी पूरी कचौरियोंका खर्च केवल दो रुपया मासिक था! और आज कैसा समय है, जब उन दो रुपयोंमें एक सप्ताहकी भी गुजर नहीं होती!! भारतवासियोंको इस अंग्रेजी राज्यमें भी क्या वह समय फिर मिलैगा? इस सांझेके व्यापारमें दो वर्ष पूरे हो गये, पर विशेष लाभ कुछ नहीं सूझा, इससे बनारसी विषादयुक्त हुए और आगरा छोड़ देनेका विचार किया । जसूसाहुसे सांझेका सब हिसाब किया तो, दो वर्षकी कमाई २००) निकली, और इतना ही खर्च बैठ गया । चलो छुट्टी हुई, हिसाब बराबर हो गया । कविवर कहते हैं—

निकसी थोथी सागर मथा, ।
भई हींगवालेकी कथा ॥
लेखा किया रूखतल बैठि,
पूंजी गई * * में पैठि ॥ ३६७ ॥

आगरा छोड़के आप खैराबाद (ससुराल) को जानेके विचारमें थे, कि एकदिन बाजारसे लौटते हुए सड़कमें एक गठरी पड़ी हुई मिली, उसमें आठ सुन्दर मोती बंधे थे। बड़ी खुशी हुई। धनार्थी मोही—जीवको प्रसन्नता ओर कब होगी? बड़े यत्नसे मोती कमरमें लगालिये । और दूसरे दिन रास्ता नापने लगे । रात्रिको श्वसुरालयमें पहुंचे बड़े आदरसे लिये गये; सबको प्रसन्नता हुई । समयपर भार्यासे एकान्त समागम हुआ । सामान्य संयोगसे, सामान्य प्रेमसे, सामान्य आनन्दसे हमारे दम्पतिक ।यह संयोग, प्रेम, आनन्द कुछ विलक्षण ही था ।

पतिप्राणा स्त्री पतिके सम्मुख कुछ समयको स्तंभित हो रही, कुछ समयको पति भी स्थकित हो रहा। दोनोंके पौद्गलिक शरीरोंने इस प्रकार सब ओरसे मौन धारण कर लिया। परन्तु यह शरीर क्रिया ऐसी ही नहीं बनी रही, पतिप्राणास्त्रीने साहस करके कुछेक अस्फुटित स्वरोंसे प्राणपतिकी शारीरिक कुशलता पूछी, और स्वामीसे सुन्दर शब्दोंमें उत्तर पाया। पश्चात् व्यापारसम्बन्धी प्रश्न किये, जिनका उत्तर पतिने मनगढ़न्तकरके अयथार्थ देना चाहा, क्योंकि बीती कथा कहनेके योग्य नहीं थी, परन्तु अर्द्धांगिनी भावभंगीसे उनका वाग्छल ताड़ गई, और अपनी स्नेहचतुराईसे शीघ्र ही पतिका आन्तरिक विषय जाननेमें सफलमनोरथा हुई। बनारसीदासजी अपनी प्रियतमासे कुछ छुपाकर न रख सके। जिन दम्पतियोंके दो शरीर एक मन हैं, उनके बीचमें कपट को स्थान कब मिल सक्ता है? पतिकी दशाका अनुमानकर साध्वी स्त्रीने आजकलकी स्त्रियोंकी नाईं पैसेकी प्रीति नहीं दिखलाई। बड़ी गंभीरतासे पतिको आश्वासन दिया और कहा—

समय पायके दुख भयो, समय पाय सुख होय।
होनहार सो है रहै, पाप पुण्य फल दोय ॥ ३७६ ॥

इसप्रकार नाना सुखशोकके संभाषणोंमें और संयोग वियोगके चिन्तवनमें रात्रिकाल शेष हो गया। संयोगकी रातें बहुत छोटी होती हैं। शीघ्र ही सवेरा हो गया। दिवसमें एकान्त पाकर उस पतिप्राणा स्त्रीने अपने पतिके करकमलोंमें २०) रु० कहींसे लाके रक्खे और हाथ जोरके कहा—

ये मैं जोरि धरे थे दाम। आये आज तुम्हारे काम।
साहिब! चिन्त न कीजे कोय। 'पुरुष जियै तो सब कछु होय॥'

अहाहा! यह अन्तका वनितावदन-विनिर्गत-पद कैसा मनोहर है? ऐसे शब्द भाग्यवान् पुरुषोंके अतिरिक्त अन्यपुरुषोंको सुनना नसीब नहीं होते। उस वन्दनीय स्त्रीकी तृप्ति इतनेहीमें नहीं हुई, उसने एकान्त पाकर अपनी माताकी गोदमें सिर रख दिया और फूट २ के रोने लगी। पतिकी आर्थिक अवस्थाके शोकसे उसका हृदय कितना विद्ध हुआ है, सो माताको खोलके दिखलाने लगी। बोली—"जननी! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है। यदि तू साहाय्य नहीं करेगी, तो प्राणपति–सर्वस्व न जानें क्या करेंगे। वे इतने लज्जालु हैं कि, अपने विषयमें किसीसे याच्ञा तो दूर रहै, एक अक्षर भी नहीं कह सक्ते। मुझसे न जाने उन्होंने कैसे कह दिया है। उनका चित्त बहुत डांवाडोल है। वे न तो घर जाना चाहते हैं और न यहां रहना चाहते हैं, परन्तु यदि तू कुछ आर्थिक सहायता करेगी, तो व्यवसाय अवश्य ही करने लगेंगे।" (धन्य पतिव्रते!), पुत्रीके हृदयदुःख को जानकर माताने आश्वासन देते हुए आंसू पोंछकर कहा, "बेटी! उदास–निराश मत हो। मेरे पास ये दोसौ रुपये हैं, सो तुझे देती हूं, इससे वे आगरेको जाकर व्यापार कर सकेंगे" (धन्य जननी!)

पुनः रात्रि हुई। दम्पति समागम हुआ। पति परायणा साध्वीने अपने कोकिल-कण्ठ-विनिन्दित-स्वरसे लालायितनेत्रोंद्वारा पतिकी मुखच्छवि अवलोकन करते हुए कहा "नाथ! मैं समझती हूं कि आप जौनपुर जानेके विचारमें नहीं होंगे, और यथार्थमें वहां जाना इस दशामें अच्छा भी नहीं है। मेरे कहनेसे आप आगरेको एक बार फिर जाइये! एक बार फिर उद्योग कीजिये! अबकी बार अवश्य ही आप सफलमनोरथ होंगे। मैं दोसौ रुपया और भी आपको

देती हूं। इन्हें मैंने अपने प्राणोंमेंसे निकाले हैं। आप ले जाइये और व्यापारमें लगाइये।" भाग्यशाली बनारसी भार्याकी कृतिपर अवाक् हो रहे। हां, न, कुछ भी नहीं कहा गया। रजनी विविधविचारोंमें पूर्ण हो गई।

दूसरे दिनसे व्यापारकी ओर चित्त लगाया गया। कपड़ा, मोती, माणिक्यादि खरीदना शुरू किया! इस तयारीमें और श्वसुरालयके सत्कारमें चार महीने गत हो गये। अवकाश बहुत मिला, इसलिये कविता भी समय २ पर अल्पबहुत की गई। अजितनाथके छन्दों[1] और धनंजयनाममालाके दोसौ दोहोंकी[2] रचना इसी समय की। पश्चात् अगहनसुदी १२ को माल मराके आगरेकी ओर रवाना हुए।

अबकी बार कटलेमें माल उतारा। समयपर श्वसुरके घर भोजन करना, बाजारमें कोठीपर सोना, और दिनभर दूकानमें बैठना, बस यही उस समयका नित्यकर्म था। समयकी बलिहारी! कपड़ेका भाव बिलकुल गिर गया। बिक्री एकदम गिर गई। अतः बजाजीसे हाथ धोकर मोती माणिक्योंमें चित्त दिया। मोतीका एक हार जो ४०) में खरीदा था, ७०) में बेचा। ३०) लाभ हुआ, इससे संतोष हुआ। तब आपने विचार किया, कि आगामी कपड़ेका व्यापार कभी नहीं करना, जवाहिरातका ही करना। देखो! सहज ही पौन दूने हो गये।

श्रीमाल-खोबरागोत्रज वेणीदासजीके पौत्र नरोत्तमदास, बालचन्द और बनारसीदास इन तीनोंमें बड़ी गाढ़ी मैत्री थी। ये तीनों रात्रिदिन

---

१ बनारसीविलास-पृष्ठ १९३।

२ **नाममाला** एकबार हमारे देखनेमें आई थी, परन्तु फिर बहुत खोज करने पर भी नहीं मिली। बड़ी अच्छी-सरल कविता है।

एकत्र रहकर आमोद प्रमोदमें सुखसे कालयापन करते थे । एक दिन तीनों मित्र एक विचार होकर कोल (अलीगढ़) की यात्राको गये । वहां संसारकी प्रबल–तृष्णाकेवशीभूत होकर भगवत्से प्रार्थी हुए—

* * * * * * । हमको नाथ! लच्छमी देहु ।
लछमी जब देहो तुम तात । तब फिर करहिं तुम्हारी जात॥

हाय ! यह लक्ष्मी ऐसी ही वस्तु है। यह भगवत्से संसारक्षयकी प्रार्थनाके बदले संसारवृद्धिकी प्रार्थना कराती है और किये हुए शुभ-फल-प्रदायक-पुण्यकर्मरूप वृक्षको इस याचना और निदानके कुठारसे काट डालती है । आज भी न जाने कितने लोग इसके कारण देवी देवताओं को मना रहे होंगे ? बस, यही प्रार्थनाकरके हमारे तीनों मित्र घरको लौट आये, कोलकी यात्रा समाप्त हुई ।

फाल्गुणमें बालचन्दका विवाह था । वरातकी तयारी हुई। मित्रने बनारसीदासजीसे साथ चलनेको अतिशय आग्रह किया । तब अन्तर्द्रव्य मोती आदि बेचके ३२) रुपया पासमें किये और वरातमें शामिल हो गये, नरोत्तमदासको भी साथ जाना पड़ा । बरातमें सब रुपया खर्च हो गये । लौटके आगरे आये और खैराबादी कपडेको झारके फरोख्त कर दिया, परन्तु हिसाब किया तो मूल और व्याज देके ४)रु० घाटेमें रहे ! अदृष्टको कौन जानता है ? व्यापारकार्य निःशेष हो चुकनेपर घरको जानेका दृढ़निश्चय कर लिया । परन्तु मित्रवर्य्य नरोत्तमदासजीने कहा—

कहै नरोत्तमदास तब, रहौ हमारे गेह ।
भाईसों क्या मित्रता? कपटीसों क्या नेह ? ४०६

१ जात्रा (यात्रा) ।

इस पर बनारसीदासजीने बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। मित्रके यहां रहना ही पडा।

कुछ दिनके पश्चात् साहुकी आज्ञासे नरोत्तमदास, उनके श्वसुर, और बनारसीदासजी तीनों पटनाकी ओर रवाना हुए। सेवक कोई साथमें नहीं लिया। फीरोजाबादसे शाहजादपुरके लिये गाडीभाडा किया। शाहजादपुरमें पहुंचते ही भाड़ेवालेने अपना रास्ता पकडा। सरायमें डेरा डाल दिया। मार्गकी थकावटके मारे तीनोंको पड़ते ही गहरी निद्राने घेर लिया। एक प्रहरके बाद जब एक मित्रकी निद्रा-टूटी, उस समय चांदनी का कुछ धुंधला २ उजेला था, इसलिये उसने समझा कि, प्रभात हो गया। अतः दोनों साथियोंको जगाया और उसी वक्त कूच कर दिया। एक कुली किरायेपर करके अपने साथ कर लिया, और उसपर बोझा लाद दिया। परन्तु दो चार कोस चलकर ही रास्ता भूल गये। एक बड़े बीहड़ जंगलमें जा फँसे। कुली रोने लगा और थोड़ा बहुत चलकर नौ दो ग्यारह हो गया। बडी विपत्ति उपस्थित हुई। उस जंगलमें इन दुखियोंके सिवाय चौथा जीव ही न था, यदि सहायता मांगते तो किससे? अतः तीनोंने बोझेके तीन हिस्से करके अपने २ सिरके हवाले किये और लगे रोते गाते रास्ता काटने। आधी रातके पश्चात् आपत्तिके मारे एक चोरोंके ग्राममें पहुंचे। पहिले पहिले चोरोंके चौधरीसे ही सामना हुआ। उसने पूछा कि, तुम कौन हो और कहांसे आये हो? इस समय सबके होश गायब थे, क्योंकि इस ग्रामकी कथा पहिलेसे सुनी हुई थी। परन्तु बनारसी-दासजीकी बुद्धि इस समय काम कर गई, उन्होंने अपना कल्पित नामग्राम बताके एक श्लोक पढा और उच्चस्वरसे चौधरीको आशीर्वाद दिया। श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनके चौधरी कुछ मृदु हुआ। उसने ब्राह्मण समझके दंडवत किया और बड़े आदरके

साथ अपने घर ले गया। तथा "आप लोग मार्ग भूल गये हैं, रात्रिभर विश्राम कर लें, प्रातः आपको रास्ता बतला दिया जावेगा" इस प्रकार वचनामृत कहके संतोषित किया। सशंकितचित्त मित्र चौधरीके घर ठहर गये। जब चौधरी अपने शयनागारमें चला गया, तब तीनोंने सूत बटकर जनेऊ बनाकर धारण किये और मिट्टी घिसके मस्तक त्रिपुण्ड्रोंसे सुशोभित किये। यथा—

माटी लीन्हीं भूमिसों, पानी लीन्हों ताल।
विप्रवेष तीनों धर्यो, टीका कीन्हों भाल ॥ ४२४ ॥

नानाप्रकारकी चिन्ताओंमें रात बिताई। सूरज निकलनेके पहिले ही हयारूढ़ चौधरीने आकर प्रणाम किया। विप्रोंने आशिष दी, और बोरिया बसना बांदके तीनों साथ हो गये। तीन कोस चलनेपर फतहपुरकी रास्ता मिलगई, तब चौधरी तो शिष्टाचारपूर्वक अपने घरको लौटा, और ये दो कोस चलने पर फतहपुर मिला, वहा दो मजदूर करके इलाहाबास गये। सरायमें डेरा लिया। गंगाके तट पर रसोई बनाके भोजन किये। पश्चात् बनारसीदासजी घूमनेके लिये नगरमें निकले। एक स्थानमें अचानक पिता खरगसेनजीके दर्शन हो गये। पुत्र पिताके चरणोंसे लपट गया, परन्तु पिताका चिरपुत्रवियोगी हृदय इस अचानकसम्मिलनको सह न सका, खरगसेनजीको तत्काल ही मूर्च्छा आ गई!

बनारसीदास और नरोत्तमदास दोनों एक डोली भाड़े करके और उसमें खरगसेनको सवार कराके जौनपुर आये। फिर जौनपुरमें दो चार दिन ठहरके व्यापारके लिये बनारस आये। बनारस जाकर पार्श्वनाथ परमेश्वरकी पूजन की। इस समय हार्दिक

मक्तिका अतिशय उद्वार हुआ। अतः दोनों मित्रोंने सदाचारकी अनेक प्रतिज्ञायें कीं—

अडिल।

सांझ समय दुविहार, भात नवकार सहि।
एक अधेली पुण्य, निरन्तर नेम गहि॥
नौकरवाली एक, जाप नित कीजिये।
दोप लगै परभात, तो घीव न लीजिये॥४३७॥

दोहा।

मारग वरत यथा शकति, सब चौदस उपवास।
साखी कीन्हें पार्श्वजिन, राखीं हरी पचास॥
दोय विवाह सु सुरति है, आगे करनी और।
परदारा संगम तज्यो, दुई मित्र इक ठौर॥४३९॥

भगवत्की पूजन करके दोनों मित्र घर आये। भोजनादि करके हसी खुशीकी बातें कर रहे थे, इतनेमें पिताकी चिट्ठी मिली। उसमें अत्यन्त दुःखप्रद समाचार थे। "तुम्हारे तीसरे पुत्रका जन्म हुआ, परन्तु १५ दिनके पीछे ही वह चल बसा, साथमें अपनी माताको भी लेता गया!" बस इससे आगे और नहीं पढ़ा गया। शोकसे छाती फटने लगी, आखोंसे आसुओंकी धारा खर २ बहने लगी। अपनी सुयोग्य सहधर्मिणीके अलौकिक गुणों और भक्तिभावों को स्मरण करकर उनके हृदयकी क्या दशा थी, इसका अनुमान हम लोग नहीं कर सकते। "हाय! वेचारीसे अन्तसमय भी न मिल सके, एकवार उसके पिपासित नेत्रोंको मेरे ये लालायित नेत्र भी न देख सके। मैंने बड़ा भारी अपराध किया, जो उसकी दुःखावस्थामें साहाय्य न

क्रिया । न जाने बेचारीके प्राण कैसे दुःखमें छूटे होंगे । सतीसाध्वि मैं तुम्हारी भक्तिका कुछ भी वदला न दे सका, क्षमा करना । "
इस प्रकारके उथल पुथल विचारोंमें मग्न बनारसीको नरोत्तमदासने नाना उपदेशोंसे सचेत किया और चिट्ठी पूरी पढ़नेको कहा। तब धैर्य्यावलम्बन करके बनारसी आगे पढने लगे, यह लिखा था । "तुम्हारी सारी अर्थात् बहूकी छोटी बहिन कुँआरी है । तुम्हारी ससुरालसे एक ब्राह्मण उसकी सगाईकी बातचीत लेके आया था, सो मैंने तुमसे बिना पूँछे ही शुभमुहूर्त शुभदिनमें सगाई पक्की करली है । भरोसा है कि, तुम मेरी इस कृतिसे अप्रसन्न नहीं होओगे"
इन द्विरूपक समाचारोंको पढकर कविवरने कहा—

एकवार ये दोऊ कथा । संडासी लुहारकी यथा ।
छिनमें अगिनि छिनक जलपात। त्यों यह हर्षशोककी बात ॥

अपने गृहसंसारके इस प्रकार अचानक परिवर्तनसे किसको शोक–वैराग्य नहीं होता ? सबको होता है और अधिक होता है ! परन्तु खेद है कि, मोहमाया–परिवेष्टित-चित्तमें यह स्मशान-वैराग्य चिरकाल तक नहीं रहता । जगत्के यावत्कार्य नियमानुसार चलते ही रहते हैं, किसीके मरने या जन्मलेनेसे उनमें अन्तर नहीं आता। बनारसीदासजीकी भी यही दशा हुई । थोडे दिनों तक उनका चित शोकाकुल रहा, परन्तु पीछे व्यापारादि कार्योंमें लिप्त होके वे सब भूल गये । सब ही भूल जाते हैं!

इन दिनों दोनो मित्रोंने छह सात महीने व्यापारमें बडी मशक्कत उठाई । आवश्यकतानुसार कभी जौनपुर और कभी बनारसमें रहे, परन्तु निरन्तर साथमें रहे । उस समय जौनपुरका नव्वाव चीनीकिलीचखां था, यह बडा बुद्धिवान, पराक्रमी तथा दानी

था। और बादशाहकी ओरसे " चारहजारीमीर " कहलाता था। इसने एक वार कविवरकी प्रशंसा सुनकर इन्हें बुलाया और बड़े प्रेमसे सिरोपाव देकर सत्कार किया। नव्वावमें और कविवरमें अत्यन्त गाढ मैत्री हो गई। नव्वावकी कविवरपर बडी कृपा रहने लगी। कुलीचखां कोई प्रदेश फतह करनेके लिये अन्यत्र चला गया और दो महिनेतक लौटके नहीं आया। इसी समय जौनपुरमें इनका कोई परम वैरी उत्पन्न हुआ, उसने इन दोनों (बनारसी-नरोत्तम) को अतिशय दुःखित किया। और बहुत सी आर्थिक हानि भी पहुंचाई।

तिन अनेकविध दुख दियो, कहौं कहां लौं सोय।
जैसी उन इनसों करी, तैसी करै न कोय ॥ ४५३ ॥

चीनीकिलीचखां देश विजय करके जौनपुर आगया, बनारसीदासजीसे पूर्वानुसार स्नेह रहा। अबकी वार उसने कविवरसे कुछ विद्याभ्यास करना प्रारंभ किया। नाममाला, श्रुतबोध, छन्द कोष, आदि अनेक ग्रन्थ पढ़े। किलीचखांके चले जानेपर जिस पुरुषने दुःख पहुंचाया था, उसके विषयमें यद्यपि कविवरने नव्वावसे कुछ भी नहीं कहा था, और अपना पूर्वोपार्जित कर्मोंका फल समझकर वे उससे कुछ बदला भी नहीं लेना चाहते थे, परन्तु वह भयभीत हो गया, और नव्वावसे प्रार्थना करके पांच पंचोंमेंसे क्षमा मांगके झगड़ेका निबटेरा जब तक न किया, तब तक उसे निराकुलता नहीं हुई। सज्जनोंके शत्रु स्वयं आकुलित रहा करते हैं। संवत् १६७२ में चीनीकिलीचखांका शरीरपात हो गया। कविवरको इस गुणग्राहीकी मृत्युसे शोक हुआ। वे अपने मित्रके साथ जौनपुर छोड़के पटनेको चले गये, वहां छह सात महीने रहकर

खूब व्यापार किया, और विपुल द्रव्य सम्पादन किया । फिर काशी और जौनपुरमें रहकर व्यापार किया, इस तरह दो वर्ष बीत गये ।

आगानूर नामके किसी उमरावने बादशाही सिरोपाव पाया था, उसका आगमन अपने नगरोंमें सुनकर लोग घर छोडकर जहां तहां भाग रहे थे। क्योंकि आगानूर बडा जालिम हाकिम सुना जाता था। हमारे दोनों मित्र भी इसी भयसे अपने गृहको आये, परन्तु जौनपुरमें देखा कि, कुटुम्बीजन पहिलेहीसे भागकर कहीं छिप रहे हैं । तब वहीं ठिकाना नहीं देखकर दोनों यात्राके लिये अयोध्याजीको गये, वहां भगवत्की पूजनकरके चल पडे, रहना योग्य नहीं समझा, इसलिये **रौनाही** आ गये । **रौनाही** धर्मनाथ भगवानका पूज्यतीर्थ है। वहां सातदिन रहकर भक्तिभावपूर्वक पूजन अध्ययन किया, और फिर दोनों मित्र घरकी ओर लौट पडे। मार्गमें सुना कि—

आगानूर, बनारसी, और जौनपुर बीच ।
कियो उदंगल बहुतनर, मारेकर अधमीच ॥ ४६९ ॥
हकनाहक पकरे सकल, जड़िया कोठीवाल ।
हुंडीवाल सराफनर, अरु जौहरी दलाल ॥ ४७० ॥
काई मारे कोररा, काई वेडी पाँय ।
काई राखे भाररसी, सबको देइ सजाय ॥ ४७१ ॥

यह खबर सुनके घरके आनेकी हिम्मत नहीं पडी, और फिर दोनों सुरहरपुरकी ओर लौट पडे । वहा जगलमें ४० दिन तक

रहे। तब तक सुना कि, आगानूर आगरेकी ओर चला गया है। अतः शीघ्र ही सफर करके जौनपुर आ गये।

जौनपुरमें सबलसिंहजी मोठियाका पत्र आया कि, "दोनों सांझी यहां चले आओ, अब पूर्वमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है।" पाठकोंको स्मरण होगा कि, यह सबलसिंह वही हैं, जिन्होंने इन दोनोंको साझी करके व्यापारको भेजा था। इस चिट्ठीके साथमें एक गुप्तचिट्ठी नरोत्तमदासजीके नामकी आई थी, जो उनके पिताने भेजी थी। नरोत्तमदासजीने चिट्ठी मनोनिमेष पूर्वक वांची और एक दीर्घनिःश्वास लेकर अपने प्राणाधिकप्रिय मित्र बनारसीके हाथमें यह चिट्ठी दे दी और पाठ करनेको कहा। बनारसी बांचने लगे, उसमें लिखा था—

> खरगसेन बानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष।
> कपटरूप तुझसों मिले, करि धूरतका भेष॥ ४८१
> इनके मत जो चलेगा, सो मांगेगा भीख।
> तातें तू हुशियार रह, यही हमारी सीख॥ ४८२

चिट्ठी पढते ही बनारसीके मुखपर कुछ शोककी छाया दिखाई दी। यह देखते ही नरोत्तम हाथ जोड़के गद्गद हो बोला "मेरे अभिन्नहृदय-मित्र! ससारमें मुझे तू ही एक सच्चा बाधव मिला है। मेरे पिताकी बुद्धि अविचारित-रम्य है। वे किसी दुष्टके बहकानेमें लगे हैं, अतः उनकी भूल क्षन्तव्य है। मेरा अचलविश्वास आपमें याव-चन्द्र-दिवाकर रहेगा। आप मुझपर कृपा रक्खें।" मित्रके इस विशदविवेक-पूर्ण और विश्वस्तभाषणसे बनारसी विमुग्ध-अवाक हो रहे। चित्तमें आनन्दकी धारा बहने लगी और उसमेंसे मंद २ शब्द निकलने लगे "यदि संसारमें मित्र हो, तो ऐसा ही हो। अहा!

"विधिना केन सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्" । एक दिन अपने मित्रके गुणोंका मनन करते हुए बनारसीदासजीने निम्नलिखित कवित्त बनाया था । इसे वे निरन्तर पढ़ा करते थे—

नवपद ध्यान गुनगान भगवंतजीको,
करत सुजान दिन ज्ञान जगि मानिये ।
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठों जाम,
रूप-धन-धाम काम मूरति वखानिये ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसको वितान तानिये ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम 'बनारसी' को,
चहुपद आदि अच्छरन नाम जानिये ॥ ४४८ ॥

नरोत्तमदास संवत् १६७३ के वैशाखमें साझेका लेखा करके साहुकी आज्ञानुसार आगरे चले गये । बनारसीदास नहीं जा सके, क्योंकि इस समय उनके पिता खरगसेनजीको बीमारी लगने लगी थी । पुत्रने पिताकी जी जानसे सेवा की, नाना औषधियोंका सेवन कराया, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ । मौतका परवाना आ चुका था, अतः विलम्ब नहीं हो सका । ज्येष्ठकृष्णा पंचमीकी कालरात्रिमें खरगसेनजीका प्राणपखेरू शरीर पंजरसे देखतेही देखते उड़ गया । पुत्र अतिशय शोकाकुल हुआ । पूज्य पिताके पूज्य गुणस्मरण करके हाय पिता ! हाय पिता ! कहनेके सिवाय वह और कुछ न कर सका—

कियो शोक वानारसी, दियो नैन भर रोय ।
हियो कठिन कीन्हों सदा, जियो न जगमें कोय ॥ ४९५

पिताके स्वर्गवास होनेपर १ महीने तक पुत्रने पितृशोक मनाया । ोक विस्मृत करनेके लिये लोगोंने उन्हें अनेक शिक्षायें देकर, ज्यों यों संतोषित किया। जीव इष्टजनोंके वियोगमें दुःखी होते हैं, परन्तु पैदान यह संसार है, मोहमायामें शीघ्र ही उसको भूल जाते हैं। नारसी फिर जगज्जालमें लीन हुए। थोड़े दिन पीछे साहुजीका पत्र आया कि "तुम्हारे विना लेखा नहीं चुकेगा, अतः तुम्हें आगरेको आना चाहिये।" साहुजीकी आज्ञानुसार बनारसीदासजी आगरेको रवाना हुए। इस यात्रामें मुगलाईके न्याय और अत्याचारका वविवरणे अपनेपर बीता हुआ वृत्तान्त लिखा है, पाठकोंको वह रुचिकर होगा।

"मैं अपने शाहजीकी आज्ञासे एक शीघ्रगामी अश्वपर सवार होके आगरेको रवाना हुआ। पहिले दिन घेसुआ नामक गांवमें रात्रि हो जानेसे ठहरना पड़ा। संयोगसे उसी दिन आगरेका एक कोठीवाल महेश्वरी अपने ६ नौकरोंके साथ इसी ग्राममें मेरे पास ही ठहर गया। और भी २-३ ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंका संग हो गया। सब १९ मनुष्य हो गये। सब आपसमें यह राय करके कि, आगरे तक बराबर साथ चलेंगे, दूसरे दिन घेसुआसे डेरा उठाके चल पड़े। कई दिन चलकर इस संघने घाटमपुरके निकट कुरी नामक ग्रामकी सरायमें डेरा डाला। सब लोग अपने २ खाने दानेकी चिन्तामें लगे, कोई बाजार गया, कोई अन्य कहीं गया। मथुरावासी ब्राह्मणोंमेंसे एक दूध लेनेके लिये अहीरके घर गया और दूसरा बाजारमें पैसे भुनाकर खाद्यसामग्री लेके डेरेपर आगया। थोड़ी देरमें वह सराफ जिसके यहांसे विप्र पैसे लाया था, आ धमका और बोला कि, तू हमको धोखा देकर

खोटा रुपया दे आया है । विप्रने कहा तू झूठ बोलता है, मैं चोखा देके आया हूं । बस! दो चार वार की 'मैं मैं तू तू' में बन पड़ी। विप्रजीने सराफको खूब मार जमाई । लोगोंने बीच बचाव बहुत करना चाहा, पर चौबेजी कब माननेवाले देवता थे! सराफका एक भाई मदद करनेके लिये दौड़ा हुआ आया । पर चौबेजीके आगे लड़नेमें बचाकी हिम्मत नहीं पड़ी; इसलिये एक जालसाजी सोची । ठीक ही है "जो बलसे नहीं जीता जावे उसे अकलसे जीतना चाहिये।" ब्राह्मणके कपड़ोंमें २५) रु० और भी बंधे हुए थे, उन्हें सराफके भाईने खोल लिये और "ये भी सब बनावटी तथा खोटे हैं" ऐसा कहता हुआ कोतवालके पास पहुंचा। मार्गमें चौबेके असली रुपयोंको कहीं चला दिये और बनावटी रुपये कोतवालके सन्मुख पेश किये और बोला "दुहाई सरकार की ! नगरमें बहुतसे ठग आये हुए हैं, वे इसी तरह हजारों खोटे रुपया चला रहे हैं । और ऐसे जबर्दस्त हैं कि, लोगोंको मारने पीटनेसे भी बाज नहीं आते । मेरे भाईको मार २ के अधमुआ कर डाला है । दुहाई हुजूर ! बचाइयो ! !" कोतवालने इस वणिककी रिपोर्टको नगरके हाकिमतक पहुंचाई । हाकिमने दीवान सा० को तहकीकातके लिये भेज दिया । सध्याका वक्त हो गया था, कोतवाल और दीवानकी सवारी सरायमें पहुंची । नगरके सैकड़ों आदमियोंकी सवारी भी सरायमें जा जमी । बड़ा जमघट्ट हुआ । कोतवाल और दीवानके सामने विप्र हाजिर किये गये । इजहार होने लगे । पहिले उनके नाम ग्रामादि पूछे गये, फिर रुपयोंके विषयमें पूंछताछ की गई । लोग नानाप्रकारकी सम्मतियां देने लगे । कोई बोले ठग हैं, कोई पाखंडी वेषी हैं, कोई बोले मालूम तो भले आदमीसे होते हैं । कोतवालने सबकी सुन सुना-

कर हुक्म दिया, इनको और इनके साथियोंको इसीसमय बाध लो। इसपर दीवानसा०ने उन्हें छेडा। कहा कि, उतावली नहीं करनी चाहिये। अभी रात्रिको चोर साहुका पूरा २ निश्चय नहीं हो सक्ता, जब तक सबेरा न हो, इन्हें पहिरेमें रखनेकी व्यवस्था कीजिये। सबेरे जैसा निश्चय हो, कीजियेगा। दीवानसा०की बात मान ली गई और सब लोग पहिरेमें रक्खे गये। उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि, "घाटमपुर, कुरां, घरी आदि तीन चारग्रामोंमेंसे यदि तुम अपनी निश्चलताके विषय साक्षी उपस्थित कर सकोगे, तो छोड दिये जाओगे अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है।" सब लोग चले गये, रात्रि आधी बीतगई, चिन्ताके मारे हम लोगोंके पास नींद खडी भी नहीं हुई। अब कि नगरभरमें वह अपना चक्र चलावे प्राय मनको प्राणहीन कर चुकी थी। नाना सोच विचारोंमें मेरा कलेजा उछल रहा था कि, एकाएक महेश्वरी कोठीवालेने कहा "मित्र! अपनी रक्षाका द्वार निकल आया। मुझे अब स्मरण हो आया कि, मेरा छोटाभाई पासके इसी घरी ग्राममें विवाहा है। अब कोई चिन्ता नहीं है" मेरे-शुष्क हृदयमें आशालताका सचार हुआ, पर एकप्रकारसे सदेह बना ही रहा, क्यों कि इतने विलम्बसे महेश्वरीने जो बात कही है, उसमें कुछ कारण अवश्य है, जो सर्वथा विपत्तिसे खाली नहीं हो सक्ता।

सबेरा हो गया, दीवान और कोतवालकी सवारी आ पहुची। साथमें हम १९ आसामियोंके लिये शूली भी तयार की हुई लाई गई, इन्हें देखते ही दयालु-हृदय पुरुष काप उठे! कि आज किन अभागोंके दिन आ पहुचे! हम लोगोंसे साक्षी मागी गई। महेश्वरीने घरीमें अपनी ससुरालकी बात कही। इसके सुनते ही हम सब लोगोंको पहिरेमें छोडके और महेश्वरीको साथ लेके

दीवान कोतवाल घरोंकी ओर गये । ससुरालवालोंसे भेट हुई । आदर सत्कार होने लगे । ससुरालवाले बडे प्रतिष्ठित पुरुष थे, उनके भेंट मिलापसे ही कोतवालकी साक्षी पूरी हो गई, वे झख सी मराये लौट आये और हमसे कहने लगे "आप सच्चे साहु हैं, हम लोगोंसे अपराध हुआ जो आप लोगोंको इतना कष्ट पहुंचाया, माफ कीजियेगा ।" मैंने कहा आप राजा हम प्रजा हैं । राजा प्रजाका ऐसा ही सम्बन्ध है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है—

जो हम कर्म पुरातन कियो । सो सब आय उदय रस दियो ।
भावी अमिट हमारा मता । इसमें क्या गुनाह क्या खता ॥

इस प्रकार बातचीत करके दीवानादि लज्जित होते हुए अपने २ घर आये । मैंने एक दिन और भी मुकाम किया । छह सात सेर फुलेल लेकर हाकिम, दीवान, कोतवाल सबकी भेटमें दिया । वे बहुत प्रसन्न हुए । अवसर पाकर मैंने उनसे कहा आपके नगरका सराफ ठग था, 'हम लोग मुफ्तमें फसाये गये थे । यद्यपि हम लोग अपने भाग्यसे बच निकले, परन्तु उस ठगके विषयमें कुछ भी विचार नहीं किया गया । गरीब ब्राह्मणोंके रुपये दिला देना चाहिये, वे व्यर्थ ही लूट लिये गये हैं । इसपर हाकिमोंने लज्जित होते हुए कहा, हमने आपके विना कहे ही उसको पकडनेकी व्यवस्थाकी थी, परन्तु खेद है कि, भेद खुलनेके पहिले ही वे दोनों यहां से टापता हैं । अतः लाचारी है ।

शामको महेश्वरी शाह आ गये, आनन्द मंगल होने लगे । शेरके पंजेसे छुटकारा पाया, सबेरे ही सब लोग चल पडे । नदीके पार होते हुए विप्रलोग मार्गमें आडे पड गये और लगे दाढ़ें मारकर रोने । हमारे रुपये लूट लिये गये, अब हम कैसे जीवेंगे । अब तो

हम यहीं प्राण दे देवेंगे। उनके इन दयायोग्य वचनोंसे हमलोग दुःखी हो गये। दया आ गई। ब्राह्मणोंका विलाप और नहीं सुना गया। हम दोनों (महेश्वरी–बनारसी)ने मिलके २५) रु० विप्रोंको देकर संतुष्ट किया। ब्राह्मण आशिष देते हुए बिदा हो गये।

"ब्राह्मण गये अशीष दै,
भये वणिक निष्पाप"

इस प्रकार मुगलाई के एक राजकीय चरित्रका वर्णन समाप्त हुआ। जिस समय आगरा बहुत निकट रह गया था, किसी पथिकने बनारसीदासजीको वह वज्र खबर सुनाई, जिसके सुननेके लिये वे आजन्म प्रस्तुत नहीं थे। और जिसके सुननेके लिये उनका कोमल हृदय सर्वथा असमर्थ था, परन्तु आनेवाली आपदायें कहकर नहीं आतीं, अचानक आ दबाती हैं। पथिकने कहा "तुम्हारे मित्र नरोत्तमका परलोक हो गया।" इसके अतिरिक्त बनारसी और कुछ न सुन सके। उनका सुन्दर शरीर तत्काल धराशायी हो गया, विचारशक्ति चली गई, वे मूर्च्छामें आविर्भूत हो गये। उनके साथी इस दशामें बड़े व्याकुल हुए, जलसेचनादि उपायोंसे उनकी मूर्च्छा-निवृत्ति की। मूर्च्छानिवृत्तिके साथ शोककी ज्वाला उनके हृदयमें धधक उठी, जिसके कारण मुंहमेंसे संतप्त उच्छ्वास निकलने लगे, और नेत्रोंसे बाष्पस्वरूप जलधारा निकलने लगी। विषादयुक्त-वदन-विनिर्गत 'हाय मित्र! हाय मित्र! हाय मित्र! कहां गये' आदि शब्द सुननेवालोंकी आंखोंमेंसे भी दो चार बूंद आंसुओंके निकालते थे। बड़ी बुरी अवस्था हो गई। लोगोंने ज्यों त्यों समझा बुझाकर उन्हें आगरेमें ठिकानेपर पहुंचाया। वहां

वे अनेक दिन तक शोकाकुल रहे, बड़ी कठिनतासे मित्रशोकको विस्मृत कर सके ।

एक दिन आगरेमें किस लिये आये हैं? इस बातकी चिन्ता हुई, तब साहुजीके हिसाब करनेके लिये गये । परन्तु साहुजीका शाही दरबार देखके अवाक् हो रहे । उन्होंने वणिकोंके घर ऐसा अधाधुध कभी नहीं देखा था । साहुजी तकियेके सहारे पड़े हैं । बन्दीजन विरद पढ़ रहे हैं । नृत्यकारिणी छमाके भर रही है । नानाप्रकारके सुदर वादित्र बज रहे हैं । भाड अपनी रगबिरगी नकलोंमें मस्त हैं । और शेठजी तथा उनके सेवक सबहीमें मस्त हैं । भला! वहा इनका हिसाब कौन सुने? और वहा इतना अवकाश किसको? कविवर लिखते हैं, कि इस दरबारमें पैर तोड़ते २ मैंने चार महिने खो दिये ।

जबहिं कहैं लेखेकी बात । साहु जवाब देहिं परभात ।
मासी घरी छमासी जाम । दिन कैसा? यह जाने राम ॥
सूरज उदय अस्त है कहा? विषयी विषय मगन है जहां ॥

साहुजीके अगाशाह नामक बहनेऊ (भगिनीपति) थे, जो बनारसीदासके मित्र थे । इनके द्वारा बनारसीदासने बड़ी कठिनतासे अपना हिसाब साफ किया । साहुजीने कहने सुननेसे ज्यों त्यों फारकती लिख दी । इसके बाद ही बनारसीदासके भाग्यका सितारा चमका । *उन्होंने साझा छोड़के पृथक् दूकान कर ली, और उसमें* खूब लाभ उठाया ।

सवत् १६७३ के फाल्गुणमासके लगभग आगरेमें उस रोगकी उत्पत्ति हुई, जो आज सारे भारतवर्षमें व्याप्त है, और जो दशवर्षसे लक्षावधि प्रजाको मुह फाड २ के निगल रहा है । जिसके आगे

डाक्टर लोग असमर्थ हो जाते हैं, हकीम लोग जवाब दे देते हैं, और वैद्य बगलें झाकते हैं। जिसे अंग्रेजीमें प्लेग, हिन्दीमें मरी, और मराठी गुजरातीमें मरकी कहते हैं। अनेक लोगोंका ख्याल है कि, यह रोग भारतमें पहिले पहिल हुआ है, परन्तु यह उनकी भूल है। इसके सैकडो प्रमाण मिलते हैं, कि प्लेग अनेक वार हो चुका है। और उसका यही रूप था जो आज है। कविवरने इस विषयमें जो वाक्य लिखे हैं, वे ये हैं—

---

१ बम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर **'सर जेम्स केम्बले'**ने **'अहमदाबाद गजेटियर'** में कुछ दिन पहिले इस विषय सम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं, जो पाठकोंके जानने योग्य हैं। उन्होंने लिखा है कि, "ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० सं० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि **आगरा-दिल्ली**की ओरसे आया था, और जिसका प्रारंभ ई० स० १६११ में पंजाबसे निश्चित होता है। जिस समय **प्लेग** आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था, वहांके तत्कालीन बादशाह **जहांगीर** उससे डरकर **अहमदाबाद**में कुछ दिनोंके लिये आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके थोडे ही दिन पीछे इस छुआछूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। साराश-अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र ८ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाई उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहां २ प्लेगका उपद्रव होता था, चूहोंकी संख्यामें वृद्धि होती थी।" उस समय हिन्दुस्थानमें जो **यूरोपियन** रहते थे, उन्हें भी प्लेगमें फंसना पडा था। वह काले और गोरोंके साथ नीतिज्ञ राजाकी नाई तब भी एक सा वर्ताव करता था। इस विषयमें **"मि० टेरी"** नामक ग्रन्थकारने लिखा है "नौ

"इस ही समय ईति विस्तरी । परी आगरे पहिली मरी ।
जहां तहां सब भागे लोग । परगट भया गांठका रोग ॥
निकसै गांठि मरै छिनमांहि । काहूकी वसाय कछु नाहिं॥
चूहे मरें वैद्य मर जाहिं। भयसों लोग अन्न नहिं खाहिं॥"

मरीसे भयभीत होकर लोग भाग २ के दूर २ के खेटों और जंगलोंमें जा रहे। बनारसीदासजी भी एक अजीजपुर नामके ग्राममें एक ब्राह्मण मालगुजारके यहां जाके रहने लगे। मरीकी निवृत्ति होनेपर वे अपने मित्र 'निहालचन्द, जीके विवाहको अमृतसर गये, और वहांसे लौटकर फिर आगरेमें रहने लगे। माताको भी जौन-

---

दिनके अरसेमें सात अंग्रेजोंकी मृत्यु हो गई, प्लेगमें फँसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी २४ घंटेसे अधिक जीता नहीं रहा, बहुतोंने तो १२ घंटेमें ही रास्ता पकड लिया।" सन् १६८४ में **औरंगजेब** बादशाहके लश्करमें भी प्लेगने कहर मचाया था, ऐसा इतिहाससे पता लगा है।

बनारसीदासजीके नाटकसमयसार ग्रन्थमें भी प्लेगका पता लगता है। उसमें बंधद्वारके कथनमें जगवासी जीवोंके लिये कहा है—

"धरमकी बूझी नहीं उरझे भरम माहिं
नाचि नाचि मर जाहिं **मरी कैसे** च

...र्ती। ...त्रो जानना चाहिये कि, उस समय प्लेगको चमका। ...गमारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं, ... खूब लाभ उ...। असाधारण लक्षण है, हैजाका नहीं

संवत् १६९क विशेष भेद भी है, जिसमें उत्पत्ति हुई, जो ना है और ज्वरके पश्चात् ... लक्षावधि प्रजाको ...निपात" बतलाया है। यह ...

पा... यद्यपि यह प्लेग... १ प्लेग... केवल ज्वर... प्लेगको "ग्रन्थि...

पुरसे अपने पास बुला लिया, और उनकी आज्ञानुसार खैराबाद जाकर उन्होंनें अपना दूसरा विवाह कर लिया । खैराबादसे आकर कविवरके चित्तमें यात्रा करनेकी इच्छा हुई, इसलिये वे अपनी माता और नवीन भार्याको साथ लेकर 'अहिछिति पार्श्वनाथ'की वंदनाको गये, और वहांसे हस्तिनागपुर आये । वहां पर भगवान् शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, और अरःनाथकी भक्तिसहित पूजन की । पूजनमें एक तात्कालिक षट्पद बनाकर पढ़ा—

श्री विससेन[1]नरेश–, सूरनृप[2]-राय सुदंसन[3] ।
ऐरा-सिरि-आदेवि,(?)[4]करहिं जिस देव प्रसंसन ॥
तासु नँदन सारंग[5]-,छाग[6]-नन्दावत[7] लंछन ।
चालिस-पँतिस-तीस, चाप[8] काया छवि कंचन ।
सुखरास 'बनारसिदास' भनि, निरखत मन आनन्दई ।
हथिनापुर–गजपुर–नागपुर, शान्ति–कुन्थु–अर वन्दई ॥

हस्तिनापुरसे दिल्ली, मेरठ, कोल होते हुए बनारसीदासजी सकुटुम्ब सकुशल आगरा आ गये । संवत् १६७६ में कविवरको द्वितीयभार्यासे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई । ७७ में माताका स्वर्गवास हो गया । ७९ में पुत्र तथा भार्या दोनोंने विदा मांग ली । और लोकरीतिके अनुसार संवत् ८० में खैराबादके कूकड़ीगोत्रज वेगाशाहजीकी पुत्रीके साथ विवाह हो गया । जैसे पतझर होके वृक्षोंमें पुनः नवीन सुकोमल उत्पलोंकी सृष्टि होती है, उसी प्रकार कविवर

१ विश्वसेन । २ सूरसिंह । ३ सुदर्शन । ४ ऐरादेवी, श्रीकान्तादेवी, सुमित्रादेवी । ५ मृग । ६ मेष । ७ नन्दावर्त । ८ धनुष् (माप विशेष) ।

एक वार कुटुम्बहीन होके पुनः गृहस्थ हो गये । इस प्रकार थोडे-ही दिनोंमें बनारसीदासजीके संसारमें अनेक उलट फेर हुए ।

आगरेमें अर्थमल्लजी नामक एक सज्जन अध्यात्मरसके परम-रसिक थे । कविवरके साथ उनका विशेष समागम रहता था । वे कविवरकी विलक्षण काव्यशक्ति देखकर हर्षित होते थे, परन्तु उनकी कविताको अध्यात्मकल्पतरुके सौरभसे हीन देख-कर कभी २ दुःखी भी होते थे, और निरन्तर उन्हें इस ओरको आकर्पित करनेके प्रयत्नमें रहते थे । एक दिन अवसर पाकर उन्हों ने पं० रायमल्लजीकृत बालावबोधटीकासहित नाटकसम-यसार ग्रन्थ कविवरको देकर कहा आप इसको एक वार पढ़िये और सत्यकी खोज कीजिये । कविवरने चित्त लगाकर समयसारका पाठ करना आरभ कर दिया । एक वार पूरा पढ़ गये, पर संतोप न हुआ अत. फिर पढा । इस प्रकार वारवार पढ़ा और भावार्थ मनन किया, परन्तु एकाएक आध्यात्मिक पेच समझ लेना सहज नहीं है । विना गुरूके अध्यात्मका यथार्थ मार्ग नहीं सूझ सक्ता । क्योंकि विलक्षणदृष्टि पुरुप भी अध्यात्ममें भूलते और चक्कर खाते देखे जाते हैं । कविवरकी बुद्धि इस परम आध्यात्मिक प्रकाशको देख-

१ पंडित **रायमल्ल**जी भाषाके वहुत प्राचीन लेखक प्रतीत होते हैं । प० दुलीचन्दजीने इन्हें तेरहवींशताब्दीके लगभगका बतलाया है । समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पचास्तिकाय टीका, पट्प्राभृत टीका, द्रव्यसग्रह टीका, सिन्दूरप्रकर टीका, एकीभाव टीका, श्रावकाचार, भक्तामरकथा, भक्तामर टीका, और अध्यात्मकमल मार्तंड आदि ग्रन्थोंके प्रभावशाली रचयिता हैं । खेद है कि इनमेंसे किसी भी ग्रन्थको हमने नहीं देखा ।

कर भी याथार्थ्य न देख सकी, उन्हें कुछ का कुछ जँचने लगा। बाह्यक्रियाओंसे वे हाथ धो बैठे, और जहां तहां उन्हें निश्चयनय ही सूझने लगा। "न इधरके हुए न उधर के हुए" वाली कहावत चरितार्थ हुई। कविवरने अपनी उस समयकी दशा एक दोहेमें इस तरह व्यक्त की है—

करनीको रस मिट गयो, भयो न आतमस्वाद।
भई **बनारसि**की दशा, जथा ऊंटको पाद॥५९७॥

इसी समय आपने ज्ञानपच्चीसी, ध्यानबत्तीसी, अध्यात्मबत्तीसी, शिवमन्दिर, आदि अनेक व्यवहारातीत सुन्दर कविताओंकी रचना की। अध्यात्मकी उपासनाके साथ २ आचारभ्रष्टताकी मात्रा बढ़ने लगी, और जैसा कि उपर कहा है, वे बाह्यक्रियाओंको सर्वथा छोड़ ही बैठे। उन्होंने जप, तप, सामायिक, प्रतिक्रमण, आदि क्रियाओंको ही केवल नहीं छोड़ा, किन्तु इतनी उच्छृखलता धारण की, कि भगवत् का चढा हुआ नैवेद्य (निर्माल्य) भी खाने लगे। इनके चन्द्रभान, उदयकरन, और थानमलजी आदि मित्रोंकी भी यही दशा थी। चारों एकत्र बैठकर केवल अध्यात्मकी चरचामें अपना कालक्षेप करते थे। इस चरचामें अध्यात्मरसका इतना विपुलप्रवाह होता था कि, उसमें प्रत्येक, धर्म, जाति, व्यवहारकी, उचित, अनुचित, श्रव्य, अश्रव्य सम्पूर्ण बातें बे रोक टोक प्रवाहित होती थीं। वे जिस बातको कहते तथा सुनते थे, उसीको घुमा फिराके व्यंगपूर्वक अध्यात्ममें घटानेकी चेष्टा किया करते थे। सारांश यह है कि, उस समय इनके जीवन का अहोरात्रिका एक मात्र यही कार्य हो रहा था। हमारे जैनसमाजमें उक्त मतके अनुयायी अब भी बहुतसे लोग हैं, जो लोकशास्त्रके उल्लंघन करनेको ही

कमर कसे रहते हैं, और अपने अभिप्रायको प्रबल बनानेकी इच्छा से आचार्योंके वाक्योंको भी अप्रमाण कहनेमे नहीं चूकते । श्रावकोंकी क्रियाओंको वे हेय समझते है, और निश्चयक्रियाओंमें अनुरक्त रहनेकी डींग मारा करते है । ऐसे महाशयोंको इस नायकके उत्तरीय जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिये । इस ऊर्द्ध और अध की मध्यदशाका पूर्ण वर्णन करनेको जिसमें हमारे कविवर और उनके मित्र लटक रहे थे, हमारे पास स्थान नहीं है । इसलिये एक दोहेमें ही उसकी इतिश्री करना चाहते हैं । पाठक इन शुद्धाम्नायियोंकी अवस्थाका अनुमान इसीसे कर लेंगे—

नगन होंहिं चारों जने, फिरहिं कोठरी माहिं।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहिं ॥

इस अवस्थाको देखकर—

कहहिं लोग श्रावक अर जती । **बानारसी 'खोसरामती'** ।

क्योंकि—

निंदा थुति जेसी जिस होय। तैसी तासु कहे सब कोय।
पुरजन विना कहे नहिं रहै । जैसी देखें तैसी कहैं ॥

सुनी कहैं देखी कहै, कलपित कहैं बनाय ।
दुराराधि ये जगतजन, इनसों कछु न बसाय ॥

कविवरने अपनी इस समयकी अवस्थापर पीछेसे अत्यन्त खेद प्रगट किया है, परन्तु फिर मतोपवृत्तिसे कहा है कि " पूर्वकर्मके उदयसयोगसे असाताका उदय हुआ था, वही इस कुमतिके उत्पादका यथार्थ कारण था । इसीसे बुद्धिमानों और गुरुजनोंकी शिक्षायें कुछ असर न कर सकीं। कर्मवासना जब तक थी, तब तक उक्त

दुर्बुद्धिके रोकनेको कोन समर्थ हो सक्ता था? परन्तु जब अशुभके उदय का अन्त हुआ, तब सहज ही वह सब खेल मिट गया। और ज्ञानका यथार्थ प्रकाश समक्ष हो गया'' इसप्रकार संवत् १६९२ तक हमारे चरित्रनायक अनेकान्तमतके उपासक होकर भी एकान्तके झूलनेमें खूब झूले। पश्चात् जब उदयने पलटा खाया, तब पंडित रूपचन्द्जीका आगरेमें आगमन हुआ। मानों आपके भाग्यकी प्रेरणा ही उन्हें आगरेमें खींच लाई। पंडितजीने आपको अध्यात्मके एकान्त रोगमें भ्रमित देखकर गोमट्टसाररूप औषधोपचार करना प्रारंभ कर दिया। अर्थात् आप कविवरको गोमट्टसार पढाने लगे। गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रियाओंका विधान भलीभांति समझते ही हृदयके पट खुल गये, सम्पूर्ण संशय दूर भाग गये और—

तब **बनारसी** और हि भयो।
स्यादवादपरणति परणयो।
सुनि २ रूपचन्द्के बैन।
बानारसी भयो दिढ़ जैन॥

हिरदेमें कछु कालिमा, हुती सरदहन बीच।
सोउ मिटी समता भई, रही न ऊंच न नीच॥

इस ७–८ वर्षके बीचमें अनेक बातें लिखने योग्य हो चुकी हैं, जो उक्त डगमगदशाके सिलसिलेमें पड़ जानेसे नहीं लिखी जा सकीं, अतः अब लिख दी जाती हैं। संवत् १६८४ में जहांगीर सम्राट् काल-

१ हंटर साहिबने जहांगीरकी मृत्युके विषयमें केवल इतना लिखा है कि, "सन् १६२७ में (संवत् १६८४) में जब कि उसका बेटा

वश हो गये, और उनकी मृत्युके चार महीने पश्चात् शाहजहां सिंहासनारूढ हुए । शाहजहा जहॉगीरके बेटे थे । जहागीरने २२ वर्ष राज्यभोग किया । काश्मीरके मार्गमें उनकी अचानक मृत्यु हो गई । इसी वर्ष बनारसीदासजीकी तीसरी भार्यासे प्रथमपुत्र अव-

---

शाहजहां और बडा सरदार **महतावखां** ये दोनो बागी हो रहे थे, जहागीर मर गया, और शाहजहा अपने बापके मरनेकी खबर सुनते ही मारामारा मुल्क दक्षिणसे उत्तरको आया, और सन् १६२८ मे आगरे आकर उसने गद्दीपर बैठनेका इस्तहार दे दिया । अवश्य ही कविवर लिखित ४ महीने इस बीचमें गुजर गये होंगे, और तख्त खाली रहा होगा ।

१ **तुजुक जहांगीरी**में बादशाहकी मृत्युके विषय इस प्रकार लिखा है-"**मच्छी भवन, अजोल** और **वेरनाग**की सैर करके बादशाह **काश्मीर**से **लाहौर**की ओरको चढे, और **वीरमकल्ले**के पहाडमे एक कुतूहलजनक शिकार करनेमे आप मग्न हुए । जमीदार लोग हरिणोंको हकालके पहाडकी चोटीपर लाते थे, और बादशाह साहब नीचेसे गोली मारते थे । हरिण गोली खाकर चक्कर खाता हुआ, नीचे तक आता था, इससे आप बडे प्रसन्न होते थे । (पर हाय! उन बेचारे तृणजीवी जीवोंको भी क्या प्रसन्नता होती थी?) एक दिन उस देशका एक प्यादा एक हरिणको घेरकर पहाडपर लाया । वह हरिण एक पत्थरकी ओटमें इस तरह हो गया, कि, बादशाह नीचेसे उसे नहीं देख सक्ते थे, इसलिये वह (प्यादा) उसके हकालनेको फिरसे चला । परन्तु चलनेमें अभागेका पैर फिसल पडा । पास ही एक वृक्ष था, उसको उसने पकडा परन्तु वह उखड आया । निदान उस पहाडकी चोटीसे लुडकता हुआ बुरी तरहसे जमीन पर आ गिरा, और गिरते ही प्राणहीन हो गया । एकके पीछे एक जीवकी यह दशा देखकर बादशाहको बडा उद्वेग हुआ । वे अपने दुःखित चित्तको

तरित हुआ, परंतु थोड़े दिन जीकर ही चल बसा। फिर संवत् ८५ में दूसरा पुत्र हुआ, जो दो वर्ष जीकर उसी पथका पथिक बन गया! संवत् ८७ में तीसरा पुत्र और ८९ में एक पुत्री इस प्रकार दो संतान हुए। यह पुत्री भी थोड़े दिनकी होकर मर गई। पुत्र 'दिन दूने रात चौगुने, के क्रमसे बढ़ने लगा। कविवरका शून्यगृह आनन्दकारी कलरवयुक्त हो गया। सूक्तिमुक्तावली, अध्यातमबत्तीसी, पैंडी, फाग, धमाल, सिन्धुचतुर्दशी, फुटकर कवित्त, शिवपचीसी, भावना, सहस्रनाम, कर्मछत्तीसी, अष्टकगीत, वचनिका आदि कविताओंका निर्म्माण भी इसी ७—८ वर्षके बीचमें हुआ। यद्यपि कविता निर्माणके समय वे केवल शुद्धरसका आस्वादन करते थे, और यह एकान्त होनेसे जिनागमके अनुकूल नहीं था,

---

सम्हाल नहीं सके, और शिकार छोडके दौलतखानेमें आ गये। थोडी देरमें उस प्यादेकी असहाया माता रोती पीटती बादशाहके पास आई। तब उन्होंने बहुत सा नकद रुपया देकर उस बुढियाको थोडी बहुत तसल्ली की, परन्तु स्वतः उनके चित्तकी तसल्ली नहीं हुई। उनकी दशा बुढियासे भी विचित्र हो गई। मानो यमराजने इस कौतुकके मिषसे उन्हें दर्शन दे दिया था।

बादशाह इसी दशामें वीरमकलेमे थेने और थेनेमे राजौरको गये। फिर वहांसे सवाकी नाईं पहर दिन रहे कूच किया। मार्गमें प्याला मांगा, पर ज्यों ही मुहसे लगाया, छूटकर उलटा आ पडा। दौलतखानेमें पहुचने तक यही दशा रही। बडी कठिनतासे रात निकली। प्रातःकाल कई स्वास बडी सख्तीसे आये और प्रहर दिन चढेके अनुमान २८ सफर सन १०३७ (कार्तिक वदी ३० संवत् १६८४) को ६० वर्षकी उमरमें हिंदुस्थानके एक शक्तिशाली सम्राटका प्राण निकल गया। सब लोग देखते ही रह गये"।

परन्तु उक्त सब कवितायें भी जिनागमके प्रतिकूल होंगी, ऐसी शंका न करनी चाहिये । वे सब अनुकूल ही हुई हैं । ऐसा कविवरने अर्द्धकथानकमें स्वयं कहा है—

सोलह सौ बानवे लों, कियो नियतरस पान ।
पै कवीसुरी सब भई, स्यादवाद परमान ॥

गोमट्टसारके पढ़ चुकने पर पंडित रूपचन्दजीकी कृपासे जब बनारसीके हृदयके कपाट खुल गये, तब उन्होंने भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत नाटकसमयसार ग्रन्थका भाषापद्यानुवाद करना प्रारंभ किया । भाषा साहित्यके भंडारमें यह ग्रन्थ कैसा अद्वितीय, और अनुपम है, अध्यात्म सरीखे कठिन विषयको कैसी सरलता और सुन्दरतासे इसमें कहा है, उसे पाठक तब ही जान सकेंगे, जब एकबार उक्त पुस्तकका आद्यन्त पाठ कर जावेंगे । संवत् १६९३ की आश्विन शुक्ला त्रयोदशीको यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, ऐसा ग्रन्थकी अन्त्यप्रशस्तिसे प्रगट होता है ।

संवत् ९६ का वह दिन कविवरके लिये बहुत शोकप्रद हुआ, जिस दिन उनके प्यारे इकलौते पुत्रने शरीर छोड़ दिया । ९ वर्षके एक होनहार बालकके इस प्रकार चले जानेसे किस मातापिताको शोक न होता होगा? अबकी बार कविवरके हृदयमें गहरी चोट बैठी, उन्हें यह संसार भयानक दिखाई देने लगा । क्योंकि—

नौ बालक हूए मुये, रहे नारिनर दोय ।
ज्यों तरुवर पतझार है, रहें ठूंठसे होय ॥

वे विचार करने लगे कि—

तत्त्वदृष्टि जो देखिये, सत्यारथकी भांति ।
ज्यों जाकों परिग्रह घटै, त्यों ताको उपशांति ॥

परन्तु—

संसारी जानें नहीं, सत्यारथकी बात ।
परिग्रहसों माने विभव, परिग्रहविन उतपात ॥

इस प्रकार विचार करनेपर भी दो वर्ष तक कविवरके मोहका उपशान्त नहीं हुआ। संवत् १६९८ में जब कि यह अर्द्ध कथानक रचा गया है, कुछ मोह उपशान्त हुआ, ऐसा कहकर हमारे चरित्र नायकने कथानकके पूर्वार्द्ध को पूर्ण किया है।

जीवनचरित्रके अन्तमें नायकके गुणदोषोंकी आलोचना करनेकी प्रथा है। विना आलोचनाके चरित्र एक प्रकार अधूरा ही कहलाता है। अतएव कविवरके गुणदोषोंकी आलोचना करना अभीष्ट है। जीवनचरित्रके लेखकोंको इस विषयमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु तो भी वे यथार्थ लिखनेमें असमर्थ होते हैं। और अनुमानादिके भरोसे जो थोड़ा बहुत लिखते भी हैं, वह नायकके विशेषकर बाह्यचरित्रोंसे सम्बन्ध रखता है। ऐसी दशामें पाठक प्रायः नायकके अन्तर्चरित्रोंसे अनभिज्ञ ही रहते हैं। परन्तु बड़े हर्षकी बात है कि, हमारे चरित्रनायक स्वयं अपने चरित्रोंको लिखके रख गये हैं, इस लिये हमको इस विषयमें विशेष प्रयास तथा चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हींके अक्षरोंको हम यहां लिखकर अर्द्धकथानकके चरित्रको पूर्ण करते हैं।

अब बनारसीके कहों, वर्तमान गुणदोष ।
विद्यमान पुर आगरे। सुखसों रहै सजोष ॥

गुणकथन ।

भाषा कवित अध्यातम माहिं । पंडित और दूसरो नाहिं ॥
क्षमावंत संतोषी भला । भली कवितपढ़वेकी कला ॥
पढै संसकृत प्राकृत शुद्ध । विविध-देशभाषा-प्रतिबुद्ध ।
जानै शब्द अर्थको भेद । ठानै नहीं जगतको खेद ॥
मिठबोला सबहीसों प्रीति । जैनधर्मकी दिढ परतीति ॥
सहनशील नहिं कहै कुबोल। सुथिर चित्त नहिं डांवाडोल ॥
कहै सबनिसों हित उपदेश । हिरदै सुष्ट दुष्ट नहिं लेश ॥
पररमणीको त्यागी सोय । कुव्यसन और न ठानै कोय ॥
हृदय शुद्धसमकितकी टेक । इत्यादिक गुन और अनेक॥
अल्प जघन्य कहे गुन जोय।नहिं उतकिष्ट न निर्मल होय॥

दोषकथन ।

क्रोध मान माया जलरेख । पै लछमीको मोह विशेख ॥
पोतै हास्य कर्मदा उदा । घरसों हुआ न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीत । नहीं दान पूजासों प्रीत ॥
थोरे लाभ हर्ष बहु धरै । अल्प हानि बहु चिन्ता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाय । सीखै भंडकला मन लाय॥
भाषै अकथकथा विरतंत । ठानै नृत्य पाय एकन्त ॥
अनदेखी अनसुनी बनाय । कुकथा कहै सभामें आय ॥
होय निमग्न हास्यरस पाय । मृषावाद विन रह्यो न जाय॥
अकस्मात भय व्यापै घनी । ऐसी दशा आय कर बनी ॥

उपसंहार।

कबहूं दोप कबहुँ गुन कोय। जाको उदय सु परगट होय॥
यह **बनारसी**जीकी बात। कही थूल जो हुती विख्यात॥
और जो सूच्छम दशा अनंत। ताकी गति जाने भगवंत॥
जे जे बातें सुमिरन भई। तेते वचनरूप परिनई॥
जे बूझी प्रमाद इहि माहिं। ते काहूपै कहीं न जाहिं॥
अल्प थूल भी कहै न कोय। भाषै सो जु केवली होय॥

एक जीवकी एकदिन, दशा होत जेतीक।
सो कहि सकै न केवली, यद्यपि जानै ठीक॥
मनपरजय अरु अवधिधर, करहिं अल्प चिंतौन।
हमसे कीटपतंगकी, बात चलावै कौन॥
तातैं कहत **बनारसी**, जीकी दशा रसाल।
कछू थूलमें थूलसी, कही बहिर विवहार।
बरस पंच पंचासलों, भाख्यो निज विरतंत॥
आगे भावी जो कथा, सो जानै भगवंत॥
बरस पँचावन ए कहे, बरस पँचावन और।
बाकी मानुप आयुमें, यह उतकिष्टी दौर॥
बरस एकसौ दश अधिक, परमित मानुप आव।
सोलह सौ अट्ठानवे, समय बीच यह भाव॥
तातैं अरधकथान यह, बानारसीचरित्र।
दुष्ट जीव सुन हँसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र॥

शेषजीवन ।

पूर्वमें कह चुके हैं कि, कविवर बनारसीदासजीकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है । इसके पश्चात् वे कब तक संसारमें रहे? क्या २ कार्य किये? प्रतिज्ञानुसार अपनी शेष जीवनी लिखी कि, नहीं? अन्य नवीन ग्रन्थोंकी रचना की कि नहीं? आदि अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, परन्तु इनका उत्तर देनेके लिये हमारे निकट कोई भी साधन नहीं है। और तो क्या हम यह भी निश्चय नहीं कर सक्ते कि, उनका देहोत्सर्ग कब और किस स्थानमें हुआ? यह बड़े शोककी बात है ।

पाठकगण जीवनचरित्रका जितना भाग उपरि पाठ कर चुके हैं, उसपर यदि विचार किया जावे, तो निश्चय होगा कि, वह समय उनकी आपत्तियोंका था । उस ५५ वर्षके जीवनने उन्हें बहुत थोड़ा समय ऐसा दिया है, जिसमें वे सुखसे रहे हों । बहुत थोडे पुरुषोंके जीवनमें इस प्रकार एकके पश्चात् एक, अपरिमित आपत्तियें उपस्थित हुई हैं । इस ५५ वर्ष की आयुके पश्चात् मोहके उपशांत होने पर उनके सुखका समय आया था, मानो विधाताने उनके जीवनके दुःख सुखमय दो विभाग स्वयं कर दिये थे और इसी लिये कविवरने इस प्रथम जीवनको पृथक् लिखनेका प्रयास किया था । आश्चर्य नहीं कि दूसरे सुखमय

१ 'बनारसीविलास' कविवरकी अनेक रचनाओंका संग्रह है। उसमें "कर्मप्रकृतिविधान" नामक सबसे अन्तिम कविता है, जो संवत् १७०० के फाल्गुणकी रची हुई है । इसके पश्चात्की कोई भी कविता प्राप्य नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है कि, कदाचित् कविवरका सुखमय जीवन १०-५ वर्षसे अधिक नहीं हुआ हो ।

जीवनको भी उन्होंने हम लोगोंके लिये लिखा हो। परन्तु यह आज हमको प्राप्त नहीं है। यह हम लोगोंका अभाग्य है।

इतिहास लिखने में जनश्रुतिया भी साधनभूता हैं। क्योंकि अनेक इतिहासोंके पत्र केवल जनश्रुतियोंके आधार पर ही रचे जाते हैं। कविवरके जीवनकी अनेक जनश्रुतिया प्रचलित हैं। परन्तु अनुमानसे जाना जाता है कि, वे सब प्रथम जीवनके पश्चात्की हैं, इसलिये हम उन्हें शेषजीवनमें सम्मिलित करना ठीक समझते हैं।

१ शाहजहां बादशाहके दरबारमें कविवर बनारसीदासजीने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बादशाहकी कृपाके कारण उन्हें प्रतिदिन दरबारमें उपस्थित होना पड़ता था और महलमें जाकर प्राय निरन्तर सतरंज खेलना पड़ती थी। कविवर सतरंजके बड़े खिलाडी थे। कहते हैं कि, बादशाह इनके अतिरिक्त किसी अन्यके साथ सतरंज खेलना पसन्द ही नहीं करते थे। बादशाह जिस समय दौरेपर निकलते थे, उस समय भी वे कविवरको साथमें रखते थे। तब अनेक राजा और नवाब खूब चिढ़ते थे, जब वे एक साधारण वणिकको बादशाहकी बराबरी पर बैठा देखते थे, और अपनेको उससे नीचे। संवत् १६९८ के पश्चात् कविवरका मोह उपशान्त होने लगा था, ऐसा कथानकमें कहा गया है। और हम जो कथा लिखते हैं, वह उसके भी कुछ पीछेकी है, जब कि, उनके चरित्र और भी विशद हो रहे थे, और जब वे अष्टांग सम्यक्त्वकी धारणा पूर्णतया कर रहे थे। कहते हैं कि उस समय कविवरने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी। अर्थात् उन्होंने संसारको तुच्छ समझके यह निश्चय किया था कि, मैं

१ सतरंजपर कविवरने अनेक कवितायें लिखी हैं।

जिनेन्द्रदेवके अतिरिक्त किसीके भी आगे मस्तक नम्र नहीं करूंगा। जब यह बात फैलते २ बादशाहके कानोंतक पहुंची, तब वे आश्चर्ययुक्त हुए परन्तु क्रोधयुक्त नहीं हुए। वे कविवरके स्वभावसे और धर्मश्रद्धासे भलीभांति परिचित थे, परन्तु उस श्रद्धाकी सीमा यहां तक पहुंच गई है, यह वे नहीं जानते थे, इसीसे विस्मित हुए। इस प्रतिज्ञाकी परीक्षा करनेके रूपमें उस समय बादशाहको एक मसखरी सूझी। आप एक ऐसे स्थानमें बैठे, जिसका द्वार बहुत छोटा था, और जिसमें बिना सिर नीचा किये हुए कोई प्रवेश नहीं कर सक्ता था। पश्चात् कविवरको एक सेवकके द्वारा बुला भेजा। कविवर द्वारपर आते ही ठिठक गये, और हुजूरकी चालाकी समझके चटसे बैठ गये। पश्चात् शीघ्र ही द्वारमें पहिले पैर डालके प्रवेश कर गये। इस क्रियासे उन्हें मस्तक नम्र न करना पड़ा। बादशाह उनकी इस बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुए, और हँसकर बोले, कविराज! क्या चाहते हो? इस समय जो मांगो मिल सक्ता है, कविवरने तीनबार वचनबद्ध करके कहा, जहांपनाह! यह चाहता हूं कि, आजके पश्चात् फिर कभी दरबारमें स्मरण न किया जाऊं! इस विचित्र याचनासे बादशाह तथा अन्य समस्त दरबारी जो उस समय उपस्थित थे, चकित तथा स्तंभित हो रहे। बादशाह इस वचनके हार देनेसे बहुत दुःखी हुए, और उदास होके बोले, कविवर! आपने अच्छा नहीं किया। इतना कहके अन्तःपुरमें चले गये, और कई दिनतक दरबारमें नहीं आये। कविवर अपने आत्मध्यानमें लवलीन रहने लगे।

२ जहांगीरके दरबारमें भी इससे पहिले एक बार और यह बात

चली थी, कि बनारसीदास किसीको सलाम नहीं करते हैं। कहते हैं कि, उससमय जब उनसे सलाम करनेके लिये कहा गया था, तब उन्हों ने–यह कवित्त पढ़कर कहा था—

> जगतके मानी जीव, है रह्यो गुमानी ऐसो,
> आस्रव असुर दुखदानी महा भीम है।
> ताको परिताप खंडिवेको परगट भयो,
> धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है॥
> जाके परभाव आगे भागें परभाव सब,
> नागर नवल सुखसागरकी सीम है।
> संवरको रूप धरै साधै शिवराह ऐसो,
> ज्ञानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है॥[1]

३ एक बार बनारसीदासजी किसी सड़कपर शुष्कभूमि देखकर पेशाव करने लगे, यह देखकर एक शाही सिपाहीने जो तत्काल ही भरती हुआ था, और जो कविवरको पहिचानता नहीं था, पासमें आकर इन्हें पकड़ लिया और दो चार चपत (तमाचे) जड़ दिये। कविवरने तमाचे सह लिये, चूं तक नहीं किया और चलते बने। दूसरे दिन शाहीदरबारमें कार्यवशात्, दैवयोगसे वही सिपाही उस समय हाजिर किया गया, जब कविवर बादशाहके निकट ही बैठे हुए थे। उन्हें देखकर बेचारे सिपाहीके प्राण सूख गये। वह समझा कि, अब मेरी मृत्यु आ पहुँची है, तब ही मैंने कल इस दरबारीसे खडे बैठे शत्रुता कर ली है। आज इसीने शिकायत करके मुझे उपस्थित कराया है। इन विचारों-

१ यह कवित्त "नाटक समयसार" में भी है।

से वह थर २ कापने लगा। बनारसी उसके मनका भाव समझ गये। सिपाही जिसकार्यके लिये बुलाया गया था, जब उसकी आज्ञा दे दी गई, तब पीछेसे कविवरने बादशाहसे उसकी सिफारिश की कि, हुजूर! यह सिपाही बहुकुटुम्बी और अतिशयदीन है, यदि सरकारसे इसका कुछ वेतन बढा दिया जावे, तो बेचारेका निर्वाह होने लगेगा। मैं जानता हू, यह ग्रानतदार नोकर है। कविवरके कहने पर उसी समय उसकी वेतन वृद्धि कर दी गई। इस घटनासे सिपाही चकित स्तंभित हो गया। उसके हृदयमें कविवरके लिये 'धन्य! धन्य!' शब्दोंकी प्रतिध्वनि बारम्बार उठने लगी। वह उन्हें मनुष्य नहीं किन्तु देवरूपमें समझने लगा, और उस दिनसे नित्य प्रात काल उनके द्वारपर जाके जब नमस्कार कर आता, तब अपनी नोकरीपर जाता था।

४ आगरेमें एक वार "बाबा शीतलदासजी" नामके कोई सन्यासी आये हुए थे। लोगोंमें उनकी शांतिता और क्षमाके विषयमें नाना प्रकार अतिशयोक्तिया प्रचलित हो रही थीं, जिन्हें सुनकर कविवर उनकी परीक्षा करनेको प्रस्तुत हो गये। एक दिन प्रभातकालमें सन्यासीजीके पास गये, और बैठके भोली २ बातें करने लगे। बातोंका सिलसिला टूटने पर पूछने लगे, महाराज! आपका नाम क्या है? बाबाजी बोले, लोग मुझे 'शीतलदास' कहा करते हैं। कुछ देर पीछे यहां वहांकी वार्ता करके फिर पूछने लगे, कृपानिधान! मैं भूल गया, आपका नाम? उत्तर मिला, शीतलदास। एक दो बातें करनेके पीछे ही फिर पूछ बैठे, महाशय! क्षमा कीजिये, मैं फिर भूल गया, आपका नाम? इस प्रकार जब तक आप वहा बैठे रहे, फिर २

कर नाम पूछते रहे, और उसी प्रकार उत्तर भी पाते रहे। फिर वहासे उठके जब घरको चलने लगे, तब थोडी दूर जाके लौटे और फिर पूछ बैठे, महाराज! क्या करू, आपका नाम सर्वथा अपरिचित है, अत मै फिर भूल गया, फिर बतला दीजिये। अभी तक तो बाबाजी शान्तिताके साथ उत्तर देते रहे, परन्तु अवकी बार गुस्सेसे बाहर निकल ही पडे। झुंझलाके बोले, अबे बेवकूफ! दशबार कह तो दिया कि, शीतलदास! शीतलदास!! शीतलदास!!! फिर क्यों खोपडी खाये जाता है? बस! परीक्षा हो चुकी, महाराज फेल (अनुत्तीर्ण) हो गये। कविवर यह कह कर वहासे चलते बने कि, महाराज! आपका यथार्थ नाम 'ज्वालाप्रसाद' होने योग्य है, इसी लिये मैं उस गुणहीन नामको याद नहीं रख सक्ता था।

५ एकवार दो नग्नमुनि आगरेमें आये हुए थे, और मन्दिरमें ठहरे थे। सब लोग उनके दर्शन वन्दनको आते जाते थे, और अपनी २ बुद्ध्यनुसार प्राय सब ही उनकी प्रशसा किया करते थे। कविवर परीक्षाप्रधानी जीव थे। उन्हें सब लोगोंकी नाईं, दर्शन पूजनको जाना ठीक नहीं जँचा, जब तक कि मुनि परीक्षित न हों। अतएव स्वय परीक्षाके लिये उद्यत हुए। एक दिन उक्त मुनिद्वय मन्दिरके दालानमें एक झरोखे (गवाक्ष)के निकट बैठे हुए थे और सम्मुख भक्तजन धर्मोपदेश सुननेकी आशासे बैठे थे। झरोखेकी दूसरी ओर एक बाग था। उस बागमें मुनियोंकी दृष्टि भलीभाति पहुचती थी, और बागमें टहलनेवाले पुरुषकी दृष्टि भी मुनियोंपर स्पष्टरीत्या पडती थी। कविवर उस बगीचेमें पहुचे, और झरोखेके

समीप खडे हो गये। जब किसी मुनिकी दृष्टि उनकी ओर आती थी, तब वे अगुली दिखाके उसे चिढाते थे। मुनियोंने उनकी यह कृति कई वार देखके मुख फेर लिया, परन्तु कविवरने अपनी अगुली मटकाना बन्द न किया। निदान मुनिद्रय क्षमा विसर्जन करनेको उद्यत हो गये। और भक्तजनोंकी ओर मुह करके बोले, कोई देखो तो बागमें कोई कूकर ऊधम मचा रहा है। इतने शब्दोंके सुनते ही जब तक कि, लोग बागमें देखनेको आये, कविवर लम्बे २ पैर रखके नौ दो ग्यारह हो गये। देखा तो वहा कोई न था। बनारसीदासजी पैर बढाये हुए चले जा रहे थे। फिरके मुनि महाशयोंसे कहा, महाराज! वहा और तो कूकर शूकर कोई न था, हमारे यहाके सुप्रतिष्ठित पडित बनारसीदासजी थे, जो हम लोगोंके पहुचनेके पहिले ही वहासे चले गये। यह जानके कि, वह कोई विद्वान् परीक्षक था, मुनियोंको कुछ चिन्ता हुई, और दोचार दिन रहके वे अन्यत्र विहार कर गये। कहते हैं कि, कविवर परीक्षा कर चुकनेपर फिर मुनियोंके दर्शनोंको नहीं गये।

६ भाषाकवियोंमें गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी बनाई हुई रामायणका भारतमें असाधारण प्रचार है, और यथार्थमें वह प्रचारके योग्य ही ग्रन्थ है। गोस्वामीजी बनारसीदासजीके समकालीन थे। संवत् १६८० में जिस समय तुलसीदासजीका शरीरपात हुआ था, बनारसीदासजीकी आयु केवल ३७ वर्षकी थी। इस लिये जो अनेक कथाओंमें सुनते है कि, बनारसीदासजी और तुलसीदासजीका कई वार मिलाप हुआ था, सर्वथा निर्मूलक भी नहीं हो सक्ता।

गोस्वामीजी निरे कवि ही नहीं थे, वे एक सच्चरित्र महात्मा थे। और सज्जनोंसे भेट करना बनारसीदासजीका एक स्वभाव था; इस लिये भी दन्तकथाओंपर विश्वास किया जा सक्ता है। यद्यपि कविवरकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है, और उसमें इस विषयका उल्लेख नहीं है, तौ भी दन्तकथाओंमें सर्वथा तथ्य नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सक्ता। एक साधारण बात समझके जीवनीमें उसका उल्लेख न करना भी संभव है।

कहते हैं कि, एकवार तुलसीदासजी बनारसीदासजीकी काव्य-प्रशंसा सुनकर अपने कुछ चेलोंके साथ आगरे आये तथा कविवरसे मिले। कई दिनोंके समागमके पश्चात् वे अपनी बनाई हुई रामायणकी एक प्रति भेट देकर विदा हो गये। और पार्श्वनाथस्वामीकी स्तुतिमय दो तीन कवितायें जो बनारसीदासजीने भेटमें दी थी, साथमें लेते गये। इसके दो तीन वर्षके उपरान्त जब दोनों कविश्रेष्ठोंका पुनः समागम हुआ, तब तुलसीदासजीने रामायणके सौन्दर्य्य विषयमें प्रश्न किया। जिसके उत्तरमें कविवरने एक कविता उसी समय रचके सुनाई—

"विराजै रामायण घटमाहिं, विराजै रामायण०"

(बनारसीविलास पृष्ठ २४२।)

तुलसीदासजी इस अध्यात्मचातुर्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले "आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है," मैं उसके बदलेमें आपको क्या सुनाऊं? । उस दिन आपकी पार्श्वनाथस्तुति पढके मैंने भी एक पार्श्वनाथस्तोत्र बनाया था, उसे आपको ही भेट करता हूं। ऐसा कहके "भक्तिविरदावली" नामक एक सुन्दर कविता कविवरको अर्पण की। कविवरको उस कवितासे

बहुत सतोष हुआ, और पीछे बहुत दिनों तक दोनों सज्जनोंकी भेट समय २ पर होती रही।

भक्तिविरदावलीकी कविता सुन्दर है, उसकी रचना अनेक छन्दोंमें है। तौ भी रामायणकी कविताका ढग उसमें नहीं है, इस लिये उक्त किंवदन्तीपर एकाएक विश्वास नहीं हो सक्ता। पाठकोंके जाननेके लिये उसके अन्तिम दो छन्द यहा उद्धृत किये जाते हैं—

गीतिका।

पदजलज श्री भगवानजूके, वसत हैं उर माहिं।
चहुँगतिविहंडन तरनतारन, देख विघन विलाहिं॥
थकि धरनिपति नहिं पार पावत, नर सु बपुरा कौन?
तिहि लसत करुणाजन—पयोधर, भजहिं भविजन तौन॥
द्युति उदित त्रिभुवन मध्य भूपन, जलधि ज्ञान गभीर।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत, दहन दोष अधीर॥
जिहि नाथ **पारस** जुगल पंकज, चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित, भजत **तुलसीदास**॥

उक्त विरदावलीमें 'तुलसीदास' इस नामके अतिरिक्त जो कि पांच छह स्थानोंमें आया है, और कोई बात ऐसी नहीं है, जिससे यह निश्चय हो सके कि, यह 'तुलसी' गुसांईजी ही थे, अथवा कोई अन्य। परन्तु गुसांईजी का होना सर्वथा असमव भी नहीं कहा जा सक्ता। क्योंकि उस समयके विद्वानोंमें आजकलकी नाई धर्मद्वेष नहीं था। वे बड़े सरलहृदयके भक्त थे।

७ कविवरका देहोत्सर्गकाल अविदित है, यह ऊपर कहा

जा चुका है, परन्तु मृत्युकालकी एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि, अन्तकालमें कविवरका कंठ अवरुद्ध हो गया था, रोगके संक्रमणके कारण वे बोल नहीं सक्ते थे। और इसलिये अपने अन्त समयका निश्चयकर ध्यानावस्थित हो रहे थे। लोगोंको विश्वास हो गया था कि, ये अब घंटे दो घंटेसे अधिक जीवित नहीं रहेंगे, परन्तु कविवरकी ध्यानावस्था जब घंटे दो घंटेमें पूर्ण नहीं हुई, तब लोग तरह २ के ख्याल करने लगे। मूर्खलोग कहने लगे कि, इनके प्राण माया और कुटुम्बियोंमें अटक रहे हैं, जब तक कुटुम्बीजन इनके सम्मुख न होंगे और दौलतकी गठरी इनके समक्ष न होगी, तब तक प्राणविसर्जन न होंगे। इस प्रस्तावमें सबने अनुमति प्रकाश की, किसीने भी विरोध नहीं किया। (मूर्खमंडलको नमस्कार है!) परन्तु लोगोंके इस तरह मूर्खता-पूर्ण विचारोंको कविवर सहन नहीं कर सके। उन्होंने इस लोकमूढ़ताका निवारण करना चाहा, इसलिये एक पट्टिका और लेखनीके लानेके लिये निकटस्थ लोगोंको इशारा किया। बड़ी कठिनताके साथ लोगोंने उनके इस संकेतको समझा। जब लेखनी पट्टिका आ गई, तब उन्होंने निम्नलिखित दो छन्द गढकर लिख दिये। इन्हें पढकर लोग अपनी भूलको समझ गये, और कविवरको कोई परम विद्वान् और धर्मात्मा समझकर वैयावृत्यमें लवलीन हुए।

> ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना।
> प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनंत सु सोहना॥
> जा परजैको अंत, सत्यकर मानना।
> चले बनारसिदास, फेर नहिं आवना॥

इस कथासे जाना जाता है कि, कविवरकी मृत्यु किसी ऐसे स्थानमें हुई है, जहां उनके परिचयी नहीं थे । क्योंकि आगरे अथवा जौनपुरमें उनकी बडी प्रतिष्ठा थी, वहां इस प्रकारकी घटना नहीं हो सक्ती थी ।

वनारसीदासजीकी रचना ।

वनारसीविलास, नाटकसमयसार, नाममाला, और अर्द्धकथानक, ये चार ग्रन्थ कविवरकी रचनाके प्रसिद्ध हैं । बाबा दुलीचन्दजी संगृहीत ग्रन्थोंकी सूची (जैनशास्त्र नाममाला) में **वनारसीपद्धति** ग्रन्थ भी आपका वनाया हुआ लिखा है । अभी तक हम अर्धकथानक और **वनारसीपद्धति** दोनोंको एक समझते हैं, परन्तु दुलीचन्दजीके लेखसे दो पृथक् ग्रन्थ प्रतीत होते हैं । क्योंकि उन्होंने वनारसीपद्धतिको जयपुरके भंडारमें मौजूद वतलाया है । अतः हो सक्ता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ हो, अथवा

१ और पाचवा ग्रन्थ वह है, जो यमुनानदीके विशालगर्भमें सदाके लिये विलीन हो गया है । और जिसके लिये कर्ता महाशयके रसिक मित्र दुःखी हुए थे । पाठको ! स्मरण है, वह **शृङ्गाररस**का ग्रन्थ था ।

२ **वनारसीपद्धति**की श्लोकसंख्या बाबा दुलीचन्दजीने ५०० लिखी है, और अर्धकथानककी श्लोकसंख्या उससे दुगुनीके अनुमान है । अर्धकथानकमें ६७० दोहा चौपाई हैं । अतः सदेह होता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ होगा, यदि बाबाजीका लिखना सत्य हो तो । इसके अतिरिक्त बाबाजीने वनारसीपद्धतिको भाषा छन्दोवद्ध ग्रिलासोंके कोष्टकमें भी लिखा है । जिससे प्रतीत होता है कि, यह भी कोई वनारसीविलास सरीखा संग्रह है, जो किसी दूसरेने किया है, अथवा स्वयं कविवरका किया हुआ है ।

अर्द्धकथानकका ही उत्तरार्द्ध हो, जिसमें उत्तरजीवनकी कथा लिखी गई हो, और अपर नाम बनारसीपद्धति हो। परन्तु हमारे देखनेमें यह ग्रन्थ नहीं आया। प्रयत्नसे यदि प्राप्त हो जावेगा, तो वह भी कभी पाठकोंके समक्ष किया जावेगा।

१ बनारसी विलास—यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है, किन्तु कविवर रचित अनेक कविताओंका संग्रह है, इस संग्रहके कर्त्ता आगरानिवासी पंडित जगजीवनजी हैं। आप कविवरकी कविताके बड़े प्रेमी थे। संवत् १७७१ में आपने बड़े परिश्रमसे इस काव्यका संग्रह किया है, ऐसा अन्त्यप्रशस्तिसे स्पष्ट प्रतिभासित होता है। सज्जनोत्तम जगजीवनजी आगराके ही रहनेवाले थे, इससे संभवतः उनकी सब कविताओंका संग्रह आपने किया होगा; परन्तु हमको आशा है कि, यदि अब भी प्रयत्न किया जावेगा, तो बहुत सी कवितायें एकत्रित हो सकेंगी। इस भूमिकाके लिखते समय हमने दो तीन स्थानोंको इस विषयमें पत्र लिखे थे। यदि अवकाश होता, तो बहुत कुछ आशा हो सकती थी, परन्तु शीघ्रता की गई, इससे कुछ नहीं हो सका। तथापि दो तीन पद इस संग्रहके अतिरिक्त मिले हैं, जिन्हें हमने ग्रन्थान्तमें लगा दिये हैं। 'बनारसी विलास' की कविता कैसी है, इसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। "कर कंकनको आरसी क्या?" काव्यरसिक पाठक स्वयं इसका निर्णय कर लेंगे।

२ नाटक समयसार—यह ग्रन्थ भाषासाहित्यके गगनमंड-

---

१ संग्रहकर्त्ताने इस ग्रन्थमें थोडेसे पद्य कुँवरपालकी छापवाले भी संग्रह कर लिये हैं। यह कुँवरपालजी बनारसीदासजीके पांच मित्रोंमें अन्यतम थे।

लका निष्कलक चन्द्रमा है । इसकी रचनामें कविवरने अपनी जिस अपूर्व शक्तिका परिचय दिया है, उसे भाषासाहित्यके अध्यात्मकी चरमसीमा कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। नाटक समयसारकी रचना आदिका समय पहिले लिखा जा चुका है, यहां उसके काव्यका परिचय देनेके लिये हम दो चार छन्द उद्धृत करते हैं। पाठक ध्यानसे पढ़ें, और देखें हमारा लिखना कहां तक सत्य है ।

(१)

मोक्ष चलवेको सौन[1], करमको करै वौन[2],
जाको रस भौन बुध लौन ज्यों घुलत है ।
गुणको गिरंथ निरगुनको सुगम पंथ,
जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥
याहीके जो पक्षी सो उड़त ज्ञान गगनमें,
याहीके विपक्षी जगजालमें रुलत है ।
हाटक[3] सो विमल विराटक सो विसतार,
नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है ॥

(२)

काया चित्रसारीमें करम परजंक[4] भारी,
मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना ।
सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिये,
मोहकी मरोर यह लोचनको ढपना ॥

१ जीना (सीढियां)। २ वमन (उलटी)। ३ सुवर्ण। ४ पलंग।

उदै बल जोर यहै स्वासको शबद घोर,
विषय सुख काजकी दौर यहै सपना ॥
ऐसी मूढ दशामें मगन रहै तिहूंकाल,
धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥

(३)

काजविना न करै जिय उद्यम, लाजविना रन माहिं न जूझे।
डीलविना न सधै परमारथ, शीलविना सतसों न अरूझै ॥
नेमविना न लहै निहचैपद, प्रेमविना रस रीति न बूझै।
ध्यानविना न थंभै मनकी गति, ज्ञानविना शिवपंथ न सूझै ॥

(४)

रूपकी न झाँक[1] हिये करमको डाँक पिये,
ज्ञान दबि रह्यो मिरगाँक[2] जैसे घनमें।
लोचनकी ढाँकसों न माने सद्गुरु हाँक,
डोलै पराधीन मूढ राँक[3] तिहूंपनमें ॥
टाँक[4] इक मांसकी डलीसी तामें तीन फाँकै[5],
तीनिको सो आँक[6] लिखि राख्यो काहू तनमें।
तासों कहै 'नाँक' ताके राखिवेको करै काँक,
लाँक[7]सो खरग बांधि बाँक[8] धरै मनमें ॥

---

१ झलक। २ चन्द्रमा। ३ रंक (दीन)। ४ टंक (परिमाण विशेष)। ५ टुकडे। ६ अंक (संख्या)। ७ लंक (कमर)। ८ वक्ता (ढिठाई)।

(५)

है नाहीं नाहीं सु है, है है नाहीं नाहिं ।
यह सरवंगी नयधनी, सब माने सबमाहिं ॥

(६)

कायासे विचारि प्रीति मायाहीमें हारजीति,
लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी ।
चुंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यों ही पाँय गाड़े पै न छांड़े टेक पकरी ॥
मोहकी मरोरसों भरमको न ठौर पावे,
धावै चहुंओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी ।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जंजीरनसों जकरी ॥

(७)

रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,
सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है ।
प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदान की सु,
राची नरवाची ठौर सांची ठकुराई है ॥
धामकी खबरदार रामकी रमनहार,
राधा रस पंथनिमें ग्रंथनिमें गाई है ।
संततिकी मानी निरवानी नूरकी निशानी,
यातें सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥

पाठक ! इस ग्रन्थकी सम्पूर्ण रचना इसी प्रकारकी है । जिस पद्यको देखते हैं, जी चाहता है कि, उसीको उद्धृत कर लें, परन्तु इतना स्थान नहीं है, इसलिये इतनेमें ही सतोष करना पड़ता है । आपकी इच्छा यदि अधिक बलवती हो, तो उक्त ग्रन्थका एकवार आद्यन्त पाठ कर जाइये ।

नाटकसमयसार मूल, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृतग्रन्थ है । उसपर परमभट्टारक श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृत सस्कृत टीका तथा कलशे हैं । और पंडित रायमलजीकृत बालावबोधिनी भाषा-टीका है । इन्हीं दोनों तीनों टीकाओंके आश्रयमे कविवरने इस अपूर्व पद्यानुवादकी रचना की है ।

२ नाममाला—यह महाकवि श्रीधनजयकृत नाममालाका भाषा पद्यानुवाद है । शब्दोंका ज्ञान करनेके लिये यह एक अत्यन्त सरल और उपयोगी ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ हमारे देखनेमें नहीं आया । परन्तु ग्रन्थप्रकाशक महाशयने मुजफ्फरपुरजिलेके छपरौली ग्रामके यात्कोंको एकवार पढते हुए सुना था, परन्तु पीछे प्रयत्न करने पर भी नहीं मिला । नाममालाके कुछ दोहे नाटक समयसारमें इस प्रकार लिखे हैं—

प्रेज्ञा धिषना शेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि ।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥

---

१ पण्डित जयचन्दजी, और पंडित हेमराजजीने भी समयसारकी भाषाटीका की है । पंडित जयचन्दजीकी टीका सबसे विस्तृत और बोधप्रद कही जाती है ।

२ शेमुषीधिषणा प्रज्ञा, मनीषा धीस्तथाशयः ॥ ११० ॥

निपुन विचच्छन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान।
पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान॥
कलावान कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमन्त।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त॥

४ अर्द्धकथानक—यह कविवरकी रचनाका चौथा ग्रन्थ है, इसमें ६७३ दोहा चौपाई हैं। हमने यह जीवनचरित्र इसी ग्रन्थके आधारसे लिखा है। इसकी कविताका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीवनचरित्रमें यत्र तत्र इसके अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं। अनुमानसे जाना जाता है, कि यह ग्रन्थ बड़ी शीघ्रतासे लिखा गया है, क्योंकि अन्य कविताओंकी नाईं कविवरने इसमें यमकानुप्रासादिपर ध्यान नहीं दिया है। केवल व्यतीतदशाका कथन ही इसके रचनेका मुख्य उद्देश रहा है। फिर भी कहीं २ के स्वाभाविक पद्य बड़े मनोहर हुए हैं।

उपसंहार।

अन्तमें हिन्दीके प्रिय गुणग्राही पाठकवर्गोंसे निवेदन करके यह लेख पूर्ण किया जाताहै कि, ग्रन्थकर्ता, प्रकाशक और सबके अन्तमें संशोधक तथा चरित्रलेखकके परिश्रमका विचार करके वे इसे ध्यानसे पढ़ें, पढ़ावें, और सर्व साधारणमें प्रचार करें। इतनेमे ही हम लोग अपना परिश्रम सफल समझेंगे। प्रकाशक महाशयकी आदरणीय प्रेरणासे मैंने इस ग्रन्थके संशोधनादिका कार्य अपनी मन्दबुद्ध्यनुसार किया

---

१ प्राज्ञमेधादिमान्विद्वानभिरूपो विचक्षण.।
पण्डितः सूरिराचार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृतः॥ १११॥

है, उसमें कहांतक सफलता हुई है, इसके निर्णयका भार पाठकोंपर ही है। यदि वाचकोंने हमारे इस परिश्रमका किंचित् भी आदर किया तो, शीघ्र ही वृन्दावनविलासादि काव्य ग्रन्थ कवियोंके विस्तृत इतिहाससहित दृष्टिगोचर करनेका प्रयत्न किया जावेगा।

हिन्दीके माननीय पत्रसम्पादकों और समालोचकोंसे प्रार्थना है कि, वे कृपाकर इस ग्रन्थकी आद्यन्त-पाठपूर्वक निष्पक्षदृष्टिसे समालोचना करनेकी कृपा करें और हम लोगोंके उत्साह और हिन्दी-प्रचारकी रुचिको बढ़ावें।

बनारसीदासजीके चरित्र लिखनेमें माननीय मुंशी देवीप्रसादजी मुसिफ जोधपुरसे मुसलमानी इतिहासकी बहुत सी बातोंकी सहायता मिली है, इस लिये यह ग्रन्थ और लेखक दोनों उनके आभारी हैं।

ग्रन्थसंशोधन तथा जीवनचरित्रमें दृष्टिदोषसे तथा प्रमादवशसे यदि कोई भूल रह गई हो, तो पाठकवृन्द क्षमा करें। क्योंकि—

"न सर्वः सर्वं जानाति" इत्यलम् विद्वद्वरेषु।

बम्बई–चन्दावाड़ी।
३०–९–०५ ई०

विनयावनत—
नाथूराम प्रेमी।
देवरी (सागर) निवासी।

बनारसीविलास ग्रन्थकी

विषयानुक्रमणिका.

नमः श्रीवीतरागाय.

जैनग्रन्थरत्नाकरस्य—रत्न ७ वां

बनारसीविलास.

विषय सूचनिका.

कवित्त मनहर.

प्रथम सहस्रनाम सिन्दूरप्रकरधाम, बावनीसवैया वेदनिर्णय पचासिका । त्रेसठशलाका मार्गना करमकी प्रकृति-कल्याणमन्दिर साधुवन्दन सुवासिका ॥ पैड़ी करमछत्तीसी पीछे ध्यानकी बत्तीसी, अध्यातमै बत्तीसी पचीसी ज्ञान शासिका । शिवकी पचीसी भवसिन्धुकी चतुरदशी, अध्यातमफाग तिथिषोड़संविलासिका ॥ १ ॥

तेरहकाठिया मेरे मनका सुप्यारागीत, पंचपद विधान सुमति देवीशत है । शारदा बड़ाई नवदुरगा निर्णय नाम, नौरतन कवित्त सु पुजा दानदत है ॥ दशबोल पहेली सुप्रश्न

प्रश्नोत्तरमाला[३२], अवस्था[३३] मतान्तर[३४] दोहरा[३५] वरणत है। अजितके[३६] छन्द शान्तिनाथछन्द[३७] सेनानव[३८], नाटकेकवित्त[३९] चार, वानी मिथ्या[४०] मत है ॥ २ ॥

फुटकरसवैया[४१] वनाये वच गोरखके[४२], वेद आदिभेद[४३] परमारथ[४४] वचनिका। उपादान[४५] निमित्तकी चिट्ठी तिनहीके[४६] दोहे, भैरों[४७] रामकली[४८] ओ विलावल[४९] सचनिका ॥ आशावरी[५०] वरवा[५१] सु धनाश्री[५२] सौरग[५३] गौरी[५४], कांफी[५५] ओ हिंडोलना[५६] मलारकी[५७] मचनिका। भूपर उद्योत करो भव्यनके हिरदैमें, विरचौ! वनारसीविलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

दोहा.

ये वरणे सक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त।
इनमें गर्भित भेद बहु, तिनकी कथा अनन्त ॥ १ ॥
महिमा जिनके वचनकी, कहै कहा लग कोय।
ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, त्यों त्यों अधिकी होय ॥२॥

इति विषयसूचनिका

श्री

अथ जिनसहस्रनाम.

दोहा.

परमदेव परनामकर, गुरुको करहुं प्रणाम ।
बुधिबल बरणो ब्रह्मके, सहसअठोत्तर नाम ॥ १ ॥
केवल पदमहिमा कहों, कहों सिद्ध गुनगान ।
भाषा प्राकृत संस्कृत, त्रिविधि शब्द परमान ॥ २ ॥
एकारथवाची शबद, अरु द्विरुक्ति जो होय ।
नाम कथनके कवितमें, दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

प्रथमोंकाररूप ईशान । करुणासागर कृपानिधान ॥
त्रिभुवननाथ ईश गुणवृन्द । गिरातीत गुणमूल अनन्द ॥ १ ॥
गुणी गुप्त गुणग्राहक बली । जगतदिवाकर कौतूहली ॥
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी । दशावतारी दीरघ दमी ॥ २ ॥
अलख अमूरति अरस अखेद । अचल अबाधित अमर अवेद ॥
परम परमगुरु परमानन्द । अन्तरजामी आनँदकन्द ॥ ३ ॥
प्राणनाथ पावन अमलान । शील सदन निर्मल परमान ॥
तत्त्वरूप तपरूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
शीलसिन्धु निरुपम निर्वाण । अविनाशी अस्पर्श अमान ॥
अमल अनादि अदीन अछोभ । अनातङ्क अज अगम अलोभ ॥ ५ ॥

अनवस्थित अध्यातमरूप । आगमरूपी अघट अनूप ॥
अपट अरूपी अभय अमार । अनुभवमंडन अनघ अपार ॥६॥
विमलपूतशासन दातार । दशातीत उद्धरन उदार ॥
नभवत पुंडरीकवत हंस । करुणामन्दिर एनविध्वंस ॥ ७ ॥
निराकार निहचै निरमान । नानारसी लोकपरमान ॥
सुखधर्मी सुखज्ञ सुखपाल । सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा.

अम्बरवत आकाशवत, क्रियारूप करतार ।
केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १२ ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥१॥

चौपाई.

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य । रमाविराम रमापति रम्य ॥
अप्रमाण अघहरण पुराण । अनमित लोकालोक प्रमाण॥१३॥
कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय । अनभव अनारूढ असहाय ॥
सुगम अनन्तराम गुणग्राम । करुणापालक करुणाधाम ॥ १४॥
लोकविकाशी लक्षणवन्त । परमदेव परब्रह्म अनन्त ॥
दुराराध्य दुर्गस्थ दयाल । दुरारोह दुर्गम दिकपाल ॥ १५ ॥
सत्यारथ सुखदायक सूर । शीलशिरोमणि करुणापूर ॥
ज्ञानगर्भ चिद्रूप निधान । नित्यानन्द निगम निरजान ॥ १६ ॥

१. 'विपुल' ऐसा भी पाठ है.

अकथ अकरता अजर अजीत । अवपु अनाकुल विषयातीत[1] ॥
मंगलकारी मंगलमूल । विद्यासागर विगतदुकूल ॥ १७ ॥
नित्यानन्द विमल निरुजान । धर्मधुरंधर धर्मविधान ।
ध्यानी धामवान[2] धनवान । शीलनिकेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
लोकनाथ लीलाधर सिद्ध । कृती कृतारथ महासमृद्ध ॥
तपसागर तपपुञ्ज अछेद । भवभयभंजन अमृत अभेद ॥१९॥
गुणावास गुणमय गुणदाम । स्वपरप्रकाशक रमता राम ॥
नवल पुरातन अजित विशाल । गुणनिवास गुणग्रह गुणपाल ॥२०

दोहा.

लघुरूपी लालचहरन, लोभविदारन वीर ।
धारावाही धौतमल, धेय धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति ज्ञानगम्यनाम द्वितीयशतक ॥२॥

पद्धरिछन्द.

चिन्तामणि चिन्मय परम नेम । परिणामी चेतन परमछेम ॥
चिन्मूरति चेता चिद्विलास । चूड़ामणि चिन्मय चन्द्रभास ॥२२॥
चारित्रधाम चित् चमत्कार । चरनातम रूपी चिदाकार ॥
निर्वाचक निर्मम निराधार । निरजोग निरंजन निराकार ॥२३॥
निरभोग निरास्रव निराहार । नगनरकनिवारी निर्विकार ।
आतमा अनक्षर अमरजाद । अक्षर अबंध अक्षय अनाद॥२४॥

१. 'विषति अतीत' ऐसा भी पाठ है. २ यश.

आगत अनुकम्पामय अडोल । अशरीरी अनुभूती अलोल ॥
विश्वंभर विस्मय विश्वटेक । व्रजभूषण व्रजनायक विवेक॥२५॥
छलभंजन छायक छीनमोह । मेधापति अकलेवर अकोह ॥
अद्रोह अविग्रह अग अरंक । अद्भुतनिधि करुणापति अबंक २६
सुखराशि दयानिधि शीलपुंज । करुणासमुद्र करुणाप्रपुंज ॥
वज्रोपम व्यवसायी शिवस्थ । निश्चल विमुक्त ध्रुव सुथिर सुस्थ २७
जिननायक जिनकुंजर जिनेश । गुणपुंज गुणाकर मंगलेश ॥
क्षेमंकर अपद अनन्तपानि । सुखपुंजशील कुलशील खानि ॥२८॥
करुणारसभोगी भवकुठार । कृपिवत कृशानु दारन तुसार ॥
कैतवरिपु अकुल कलानिधान । धिषणाधिप ध्याता ध्यानवान २९

दोहा.

छैंपाकरोपम छलरहित, छेत्रपाल छेत्रज्ञ ॥
अंतरिक्षवत गगनवत, हुत कर्माकृत यज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पद्धरिछन्दः

लोकांत लोकप्रभु लुप्तमुद्र । संवर सुखधारी सुखसमुद्र ॥
शिवरसी गूढ़रूपी गरिष्ट । बलरूप बोधदायक वरिष्ट ॥३१॥
विद्यापति धीधव विगतवाम । धीवंत विनायक वीतकाम ॥
धीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल । लीलाविलास जिन शारदूल ॥३२
परमारथ परमातम पुनीत । त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत ॥
तपराशि तेजकुल तपनिधान । उपयोगी उग्र उदोतवान॥३३॥

---

१ चन्द्रोपम.

उत्पातहरण उद्दामधाम । व्रजनाथ विमक्षर विगतनाम ॥
बहुरूपी बहुनामी अजोप । विषहरण विहारी विगतदोष॥३४॥
छितिनाथ छमाधर छमापाल । दुर्गम्य दयार्णव दयामाल ॥
चतुरेश चिदातम चिदानंद । सुखरूप शीलनिधि शीलकन्द॥३५॥
रसव्यापक राजा नीतिवंत । ऋषिरूप महर्षि महमहंत ॥
परमेश्वर परमऋषि प्रधान । परत्यागी प्रगट प्रतापवान॥३६॥
परतक्षपरमसुख करमगुद्र । हन्तारि परमगति गुणसमुद्र ॥
सर्वज्ञ सुदर्शन सदातृप्त । शंकर सुवासवासी अलिप्त ॥ ३७॥
शिवसम्पुटवासी सुखनिधान । शिवपंथ शुभंकर शिखावान ॥
असमान अंशधारी अशेष । निर्द्वन्दी निर्जड़ निरवशेष॥३८॥

दोहा.

विस्मयधारी बोधमय, विश्वनाथ विश्वेश ।
बंधविमोचन वज्रवत, बुधिनायक विबुधेश ॥ ३९ ॥

इति लोकांत नाम चतुर्थ शतक ॥४॥

छन्दरोडक.

महामंत्र मंगलनिधान मलहरन महाजप ।
मोक्षस्वरूपी मुक्तिनाथ मतिमथन महातप ॥
निस्तरङ्ग निःसङ्ग नियमनायक नंदीसुर ।
महादानि महज्ञानि महाविस्तार महागुर ॥ ४० ॥
परिपूरण परजायरूप कमलस्थ कमलवत ।
गुणनिकेत कमलासमूह धरनीश ध्यानरत ॥

मूतिवान भूतेश भारछम भर्म उछेदक ।
सिंहासननायक निराश निरभयपदवेदक ॥ ४१ ॥
शिवकारण शिवकरन भविक बंधव भवनाशन ।
नीरिंरश निःसमर सिद्धिशासन शिवआसन ॥
महाकाज महाराज मारजित मारविहंडन ।
गुणमय द्रव्यस्वरूप दशाधर दारिदखंडन ॥ ४२ ॥
जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर ।
जगतबंधु जिनराज शीलसंचय सुखसागर ॥
महाशूर सुखसदन तरनतारन तमनाशन ।
अगनितनाम अनंतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥
वारिजवत जलजवत पद्म उपमा पंकजवत ।
महाराम महधाम महायशवंत महासत ॥
निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि ।
प्रशमरूप प्रशमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुछन्द.

सुरसभोगी रसील समुदायकी चाल——
शुभकारनशील इह सील राशि संकट निवारन ।
त्रिगुणातम तपतिहर परमहंसपर पंचवारन ॥
परम पदारथ परमपथ, दुखभंजन दुरलक्ष ।
तोषी सुखपोषी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामंत्र नाम पचम शतक ॥५॥

तोटक छन्द.

परमप्रबोध परोक्षरूप, परमादनिकन्दन ।
परमध्यानधर परमसाधु, जगपति जगवंदन ॥
जिन जिनपति जिनसिंह, जगतमणि बुधकुलनायक ।
कल्पातीत कुलालरूप, दृग्मय दृगदायक ॥ ४६ ॥
कोपनिवारणधर्मरूप, गुणराशि रिपुंजय ।
करुणासदन समाधिरूप, शिवकर शत्रुंजय ॥
परावर्त्तरूपी प्रसन्न, आतमप्रमोदमय ।
निजाधीन निर्द्वन्द, अक्षवेदक व्यतीतमय ॥ ४७ ॥
अपुनर्भव जिनदेव सर्वतोभद्र कलिलहर ।
धर्माकर ध्यानस्थ धारणाधिपति धीरधर ॥
त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलातपपादप ।
सुखमन्दिर सुखमय अनन्तलोचन अविपादप ॥४८॥
लोकअग्रवासी त्रिकालसाखी करुणाकर ।
गुणआश्रय गुणधाम गिरापति जगतप्रभाकर ॥
धीरज धोरी धौतकर्म धर्मंग धामेश्वर ।
रत्नाकर गुणरत्नराशि रजहर रामेश्वर ॥ ४९ ॥
निरलिङ्गी शिवलिङ्गधार बहुतुंड अनानन ।
गुणकदम्ब गुणरसिक रूपगुण अंजिक पानन ॥
निरअंकुश निरधाररूप निजपर परकाशक ॥
विगलालय निरबंध बंधहर बंधविनाशक ॥ ५० ॥

बृहत अनङ्ग निरश अशगुणसिन्धु गुणालय ।
लक्ष्मीपति लीलानिधान वितपति विगतालय ॥
चन्द्रवदन गुणसदन चित्रधर्मासुख थानक ।
ब्रह्माचारी वज्रवीर्य बहुविधि निरवानक ॥ ५१ ॥

दोहा

सुखकदम्ब साधक सरन, सुजन इष्टसुखवास ।
बोधरूप बहुलातमक, शीतल शीलविलास ॥ ५२ ॥

इति श्रीपरमप्रबोधनामक षष्ठ शतक ॥ ६ ॥

रूप चौपई

केवलज्ञानी केवलदरसी । सन्यासी सयमी समरसी ॥
लोकातीत अलोकाचारी । त्रिकालज्ञ धनपति धनधारी ॥५४॥
चिन्ताहरण रसायन रूपी । मिथ्यादलन महारसकूपी ॥
निर्वृतिकर्ता मृषापहारी । ध्यानधुरधर धीरजधारी ॥ ५५ ॥
ध्याननाथ ध्यायक वल्वेदी । घटातीत घटहर घटभेदी ॥
उदयरूप उद्धत उतसाही । कलुपहरणहर किल्विपदाही ॥५६॥
वीतराग बुद्धीश विपारी । चन्द्रोपम वितन्द्र व्यवहारी ॥
अगतिरूप गतिरूप विधाता । शिवविलास शुचिमय सुखदाता५७
परमपवित्र असस्यप्रदेशी । करुणासिंधु अचिन्त्य अभेषी ॥
जगतमूर निर्म्मल उपयोगी । भद्ररूप भगवन्त अभोगी॥५८॥

---

१ 'शुद्धि सुविचारी' ऐसा भी पाठ है

भानोपम भरता भवनासी । द्वन्दविदारण योधविलासी ॥
कौतुकनिधि कुशली कल्याणी । गुरू गुसाँई गुणमय ज्ञानी॥५९॥
निरातंक निरवैर निरासी । मेधातीत मोक्षपदवासी ॥
महाविचित्र महारसभोगी । भ्रमभंजन भगवान अरोगी ॥६०॥
कल्मषभंजन केवलदाता । धाराधरन धरापति धाता ॥
प्रज्ञाधिपति परम चारित्री । परमतत्त्ववित् परमविचित्री ॥६१॥
संगातीत संगपरिहारी । एक अनेक अनन्ताचारी ॥
उद्यमरूपी ऊरधगामी । विश्वरूप विजया विश्रामी ॥ ६२ ॥

दोहा.

धर्मविनायक धर्मधुज, धर्मरूप धर्मज्ञ ।
रत्नगर्भ राधारमण, रसनातीत रसज्ञ ॥ ६३ ॥

इति केवलज्ञानी नामक सप्तम शतक ॥ ७ ॥

रूप चौपई.

परमप्रदीप परमपददानी । परमप्रतीति परमरसज्ञानी ॥
परमज्योति अघहरन अगेही । अजित अखंड अनंग अदेही ६४॥
अतुल अशेष अरेय अलेपी । अमन अवाच अदेख अभेपी ॥
अकुल अगूढ़ अकाय अकर्मी । गुणधर गुणदायक गुणमर्म्मी ६५
निस्सहाय निर्म्मम नीरागी । सुधारूप सुपथग सौभागी ॥
हतकैतवी मुक्तसंतापी । सहजस्वरूपी सबविधि व्यापी ॥ ६६॥
महाकौतुकी महद विज्ञानी । कपटविदारन करुणादानी ॥
परदारन परमारथकारी । परमपौरुषी पापप्रहारी ॥ ६७ ॥

केवलब्रह्म धरमधनधारी । हतविभाव हतदोष हँतारी ॥
भविकदिवाकर मुनिमृगराजा । दयासिंधु भवसिंधु जहाजा ॥६८॥
शंभु सर्वदर्शी शिवपंथी । निराबाध निःसंग निर्ग्रन्थी ॥
यती यंत्रदाहत (१) हितकारी । महामोहबारन वरुधारी॥६९॥
चितसन्तानी चेतनवंशी । परमाचारी भरमविध्वंसी ॥
सदाचरण स्वशरण शिवगामी । बहुदेशी अनन्त परिणामी॥७०॥
वितथभूमिदारनहलपानी । भ्रमवारिजवनदहनहिमानी ॥
चारु चिदङ्कित द्वन्दातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जीती॥ ७१ ॥
शुभकारण शुभकर शुभमंत्री । जगतारन ज्योतीश्वर जंत्री ७२

दोहा.

जिनपुङ्गव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।
मुक्ति मुकुन्द महेश हर, महदानंद मुनीश ॥ ७३ ॥

इति श्रीपरमप्रदीप नाम अष्टम शतक ॥ ८ ॥

मंगलकमला.

दुरित दलन सुखकन्द । हत भीत अतीत अमन्द ॥
शीलशरणहत कोप । अनभंग अनंग अलोप ॥ ७४ ॥
हंसगरभ हतमोह । गुर्णसंचय गुणसन्दोह ॥
सुखसमाज सुख गेह । हतसंकट विगत सनेह ॥ ७५ ॥
क्षोभदलन हतशोक । अगणित बल अमलालोक ॥
धृतसुधर्म कृतहोम । सतसूर अपूरव सोम ॥ ७६ ॥

---

१ दूसरी पुस्तकमें 'त्रिगुणातम निज सन्दोह' ऐसा पाठ है.

हिमवत हतसंताप । नजव्यापी विगतालाप ॥
पुण्यस्वरूपी पूत । सुखसिंधु स्वयं संभूत ॥ ७७ ॥
समयसारश्रुतिधार । अविकलप अजल्पाचार ॥
शांतिकरन धृतशांति । कलरूप मनोहरकान्ति ॥ ७८ ॥
सिंहासनपर आरूढ़ । असमंजसहरन अमूढ़ ॥
लोकजयी हतलोभ । कृतकर्मविजय धृतशोभ ॥ ७९ ॥
मृत्युंजय अनजोग । अनुकम्प अशंक असोग ॥
सुविधिरूप सुमतीश । श्रीमान् मनीषाधीश ॥ ८० ॥
विदित विगत अवगाह । कृतकारज रूपअथाह ॥
वर्द्धमान गुणभान । करुणाधरलीलविधान ॥ ८१ ॥
अक्षयनिधान अगाध । हतकलिल निहतअपराध ॥
साधिरूप साधक धनी (?) । महिमा गुणमेरु महामनी (?) ८२
उतपति वैभुववान । त्रिपदी त्रिपुंज त्रिविधान ॥
जगजीत जगदाधार । करुणागृह विपतिविदार ॥ ८३ ॥
जगसाक्षी वरवीर । गुणगेह महागंभीर ॥
अभिनंदन अभिराम । परमेष्ठी परमोद्दाम ॥ ८४ ॥

दोहा.

सगुण विभूती वैभवी, सेमुषीश संबुद्ध ।
सकल विश्वकर्मा अभव, विश्वविलोचन शुद्ध ॥ ८५ ॥

इति दुरितदलननाम नवम शतक ॥ ९ ॥

मंगलकमला.

शिवनायक शिव एव । प्रवलेश प्रजापति देव ॥
मुदित महोदय मूल । अनुकम्पा सिंधु अकूल ॥ ८६ ॥
नीरोपम गतं पंक । नीरीहत निर्गत शंक ॥
नित्य निरामय मौन । नीरन्ध्र निराकुल गौन ॥ ८७ ॥
परम धर्म रथ सारथी (?) । धृत केवल रूप कृतारथी (?) ॥
परम नित्य भंडार । संवरमय संयमधार ॥ ८८ ॥
शुभी सरवगत संत । शुद्धोधन शुद्ध सिद्धंत ॥
नैयायक नय जान । अविगत अनंत अभिधान ॥ ८९ ॥
कर्मनिर्जरामूल । अघभंजन सुखद अमूल ॥
अद्भुत रूप अशेप । अवगमनिधि अवगमभेप ॥ ९० ॥
वहुगुण रत्नकरंट । ब्रह्मांड रमण ब्रह्मंड ॥
वरद बंधु भरतार । महदंग महानेतार ॥ ९१ ॥
गतप्रमाद गतपास । नरनाथ निराथ निरास ॥
महामंत्र महास्वामि । महदर्थ महागति गामि ॥ ९२ ॥
महानाथ महजान । महपावन महानिधान ॥
गुणागार गुणवास । गुणमेरु गभीर विलास ॥ ९३ ॥
करुणामूल निरंग । महदासन महारसंग ॥
लोकबन्धु हरिकेश । महदीश्वर महदादेश ॥ ९४ ॥

---

१ क=पाप २ महत्+अग ३ महत्+आसन. ४ महत्+ईश्वर. ५ महत्+आदेश.

महाविमु महधववंत । घरणीधर घरणीकंत ॥
कृपावंत कलिग्राम । कारणमय करत विराम ॥ ९५ ॥
मायावेलि गयन्द । सम्मोहतिमरहरचन्द ॥
कुमति निकन्दन काज । दुखगजभंजन मृगराज ॥९६॥
परमतत्त्वसत संपदा (?) । गुणत्रिकालदर्शीसदा (?) ॥
कोपदवानलनीर । मदनीरदहरणसमीर ॥ ९७ ॥
भवकांतारकुठार । संशयमृणालअसिधार ॥
लोभाशिखरनिर्घात । विपदानिशिहरणप्रभात ॥ ९८ ॥

दोहा

संवररूपी शिवरमण, श्रीपति शीलनिकाय ॥
महादेव मनमथमथन, सुखमय सुखसमुदाय ॥ ९९ ॥

इति श्रीशिवनायक नाम दशम शतक ॥ १० ॥

दोहा.

इति श्रीसहसअठोतरी, नाम मालिका मूल ।
अधिक कसर पुनरुक्ति की, कविप्रमादकी भूल ॥१००॥
परमपिंड ब्रह्मंडमें, लोकशिखर निवसंत ।
निरखि नृत्य नानारसी, वानारसी नमंत ॥ १०१ ॥
महिमा ब्रह्मविलासकी, गोपर कही न जाय ।
यथाशक्ति कछु वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
संवत सोलहसो निवे, श्रावण सुदि आदित्य ।
करनक्षत्र तिथि पंचमी; प्रगट्यो नाम कवित्त ॥ १०३ ॥

इति भाषाजिनसहस्रनाम ।

ॐ

श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता

सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत

भाषासूक्तमुक्तावली.

(सिंदूरप्रकर.)

धर्माधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

सिन्दूरप्रकरस्तपः करिशिरःक्रोडे कषायाटवी-
दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः ।
मुक्तिस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः श्रेयस्तरोः पल्लव-
प्रोल्लासः क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभोः पातु वः ॥१॥

षट्पद ।

शोभित तपगजराज, सीस सिन्दूर पूरछवि ।
बोधदिवस आरंभ, करण कारण उदोत रवि ॥
मंगल तरु पल्लव, कषाय कांतार हुताशन ।
बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलाकमलाशन ॥
इहिविधि अनेक उपमा सहित, अरुण चरण संताप हर ।
जिनराय पार्श्वनखज्योति भर, नमत बनारसि जोर कर ॥१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः
सूतेऽम्भः कमलानि तत्परिमलं वाता वितन्वन्ति यत् ।
किं वाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां ततस्ते स्वयं
कर्तारः प्रथने न चेदथ यशःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

दोधवान्तबेसरीछन्द ।

जैसे कमल सरोवर वासै । परिमल तासु पवन परकाशै ।
त्यों कवि भाषहिं अक्षर जोर । संत सुजस प्रगटहि चहुँओर ॥
जो गुणवन्त रसाल कवि, तौ जग महिमा होय ।
जो कवि अक्षर गुणरहित, तौ आदरै न कोय ॥ २ ॥

इन्द्रवज्रा ।

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

दोधवान्तबेसरीछन्द ।

सुपुरुष तीन पदारथ साधहिं । धर्म विशेष जान आराधहिं ।
धरम प्रधान कहैं सब कोय । अर्थ काम धर्महिंतैं होय ॥
धर्म करत संसारसुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्मपंथसाधनविना, नर तिर्यंच समान ॥ ३ ॥

यः प्राप्य दुष्प्रापमिदं नरत्वं धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥